Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अइउण्, ऋऌक् आदि

प्रत्याहार-सूत्रों का निर्माता कौन?

([illegible])

लेखक

न्यास-पर्यालोचन, बालमनोरमा-भ्रान्तिदिग्दर्शन, वैयाकरण-भूषणसार के विख्यात भैमीभाष्य तथा लघु-सिद्धान्तकौमुदी की सुप्रसिद्ध भैमीव्याख्या (छः भाग) के निर्माता

भीमसेन शास्त्री

एम्०ए०, पीएच्.डी०, साहित्यरत्न

भैमी प्रकाशन

537, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली -110006

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अइउण्, ऋलृक् आदि--

प्रत्याहार-सूत्रों का निर्माता कौन ?

(नन्दिकेश्वरकाशिकासहित)

--लेखक--

न्यास-पर्यालोचन, बालमनोरमाभ्रान्तिदिग्दर्शन, वैयाकरण-भूषणसार के विख्यात भैमीभाष्य तथा लघु-सिद्धान्तकौमुदी की सुप्रसिद्ध भैमी-व्याख्या (चार भाग) के निर्माता

भीमसेन शास्त्री

एम्० ए०, पीएच्० डी०, साहित्यरत्न

भैमी प्रकाशन

५३७, लाजपतराय मार्केट,

दिल्ली-११०००६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रकाशक :—

भैमी प्रकाशन
५३७, लाजपतराय मार्केट
दिल्ली-११०००६.

★ ★

PRATYAHAR-SUTRON KA NIRMATA KAUN ?

First Edition : 1984

© BHIM SEN SHASTRI (1920)
भीमसेन शास्त्री

★ ★

प्रथम संस्करण : १९८४

मूल्य : पच्चीस रुपये केवल
Price : Rs. Twenty five only.

★ ★

All rights reserved by the author. The book or parts thereof may not be reproduced in any form or translated without the written permission of the author.

★ ★

बी० के० कम्पोजिंग एजेंसी, कैलाश नगर, दिल्ली द्वारा कम्पोज करवा कर
राधा प्रेस मेन रोड, गांधी नगर, दिल्ली-११००३१ में मुद्रित.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषयानुक्रमणी

(१) प्रत्याहारसूत्र और पाणिनीय उपलब्धियां (१—३)
(२) प्रत्याहारसूत्रों पर पाणिनीयशिक्षा का मन्तव्य (३—३)
(३) प्रत्याहारसूत्रों पर नन्दिकेश्वरकाशिका के विचार (४—५)
(४) प्रत्याहारसूत्रों पर नागेशभट्ट का मन्तव्य (५—७)
(५) प्रत्याहारसूत्रों पर भाष्यकार का मन्तव्य (७—१५)
(६) प्रत्याहारसूत्रों पर कैयटोपाध्याय का मन्तव्य (१५—१८)
(७) प्रत्याहारसूत्रों और 'अथ शब्दानुशासनम्' का कर्तृत्व ? (१६—२४)
(८) प्रत्याहारसूत्रों पर काशिकाकार का मन्तव्य (२४—२४)
(९) प्रत्याहारसूत्रों पर स्कन्दस्वामी का मन्तव्य (२४—२४)
(१०) प्रत्याहारसूत्रों पर अग्निपुराण का मन्तव्य (२४—२५)
(११) प्रत्याहारसूत्रों पर धारेश्वर भोज का मन्तव्य (२५—२५)
(१२) प्रत्याहारसूत्रों पर धर्मकीर्त्ति आदि का मन्तव्य (२५—२५)
(१३) प्रत्याहारसूत्रों पर तत्त्वबोधिनीकार का मन्तव्य (२५—२५)
(१४) प्रत्याहारसूत्रों पर हरिदीक्षित का मन्तव्य (२६—२६)
(१५) प्रत्याहारसूत्रों पर स्वामिदयानन्द सरस्वती का मन्तव्य (२६—२६)
(१६) प्रत्याहारसूत्रों पर सभापतिशर्मोपाध्याय का मन्तव्य (२६—२७)
(१७) प्रत्याहारसूत्रों पर गुरुप्रसादशास्त्री का मन्तव्य (२७—२७)
(१८) प्रत्याहारसूत्रों पर काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर का मन्तव्य (२७—२७)
(१९) प्रत्याहारसूत्रों पर हर्षनाथमिश्र का मन्तव्य (२७—२८)
(२०) प्रत्याहारसूत्रों पर न्यासकार तथा चन्द्राचार्य का मन्तव्य (२९ २९)
(२१) प्रत्याहारसूत्रों का पाणिनि से पूर्व अस्तित्व (२९—३३)
(२२) उपसंहार (३४—३५)
(२३) परिशिष्टप्रकरणम् (३६—४५)
[१] कातन्त्रव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (३६—३६)
[२] चान्द्रव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (३७—३७)
[३] जैनेन्द्रव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (३७—३८)
[४] शाकटायनव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (३८—४०)
[५] सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रत्याहारसूत्र (४०—४०)
[६] हैमशब्दानुशासन के प्रत्याहारसूत्र (४०—४१)
[७] मलयगिरिशब्दानुशासन के प्रत्याहारसूत्र (४१—४२)
[८] सारस्वतव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (४२—४३)
[९] मुग्धबोधव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (४३—४४)
[१०] संक्षिप्तसारव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (४४ ४४)
[११] हरिनामामृतव्याकरण के प्रत्याहारसूत्र (४४—४५)
(२४) नन्दिकेश्वरकाशिका (मूल) (४६—४८)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूर्वपीठिका

अइउण् ऋलृक् आदि पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों का महत्त्व संस्कृतव्याकरण के प्रेमी अध्येताओं से छिपा नहीं है । प्रचलित परम्परा के अनुसार इन सूत्रों को महेश्वर अर्थात् महादेव की कृपा से पाणिनि को प्राप्त हुआ माना जाता है । इस शोधपत्र में तदनुसार इस परम्परा की निखिल मान्यताओं का विवेचन करते हुए उन मान्यताओं को महाभाष्य आदि व्याकरण के प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया गया है ।

आज से प्रायः चालीस वर्ष पूर्व लेखक ने अपने विचार दिल्ली से निकलने वाली मासिकपत्रिका **'दयानन्द-सन्देश'** में संक्षिप्तरीत्या प्रस्तुत किये थे । इस के बाद लेखक के दृष्टिपथ में अनेक नये प्रमाण और नई-नई बातें आईं । नये-नये प्रमाणों को पा कर लेखक के विचार अपने पूर्व मन्तव्य पर उत्तरोत्तर दृढ़ से दृढ़तर होते गये । अब इन सब का निचोड़ इस लघुपुस्तिका में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है ।

इस के साथ ही पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों से प्रभावित **कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, हैमशब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दानुशासन, सारस्वत, मुग्धबोध, संक्षिप्तसार** और **हरिनामामृत**—इन ग्यारह पाणिन्युत्तरवर्त्ती प्रमुख व्याकरणों के प्रत्याहारसूत्रों तथा उन की प्रत्याहारविधा पर भी इस ग्रन्थ में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । कितनी ही बार पाणिन्युत्तरवर्त्ती अनेक वैयाकरणों ने इन प्रत्याहारसूत्रों से मुक्ति पानी चाही या इन में तरह-तरह के संशोधन प्रस्तुत किये, पर अन्त में वे लोकप्रिय न हो सके । जहां वे व्याकरण आज कहीं नाममात्र से भी प्रचलित नहीं दिखाई पड़ते वहां पाणिनीयव्याकरण अढ़ाई हज़ार वर्षों के बाद भी पूर्ववत् सार्वभौमरूप से प्रतिष्ठित है । दूसरे शब्दों में गत दो-अढ़ाई सहस्र वर्षों के अन्तराल में भारतीय व्याकरणविदों के प्रत्याहारविषयक चिन्तन का पूरा-पूरा लेखा-जोखा आप इस लघुपुस्तिका के परिशिष्टों में प्राप्त कर सकते हैं । इस के अतिरिक्त इस पुस्तिका के अन्त में बहुचर्चित नन्दिकेश्वरकाशिका का पूरा ग्रन्थ भी मूलरूप में दे दिया गया है । इस तरह इस विषय की आज तक की उपलब्ध पूर्ण सामग्री पाठकों के आगे प्रस्तुत की गई है । अनुसन्धान के द्वार सदा खुले रहते हैं । यदि कुछ और भी इस विषय में कहीं मिले तो उसे भी विद्वज्जनों को प्रकट करना चाहिये । आशा है मेरा यह प्रयत्न अनुसन्धानप्रेमी सुधीजनों के लिये कुछ मार्गदर्शक सिद्ध होगा ।

मुखर्जी स्ट्रीट,
गांधीनगर, दिल्ली-११००३१
चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सं० २०४१ वै०
२-४-१९८४ (ई०)

सुरभारतीसमुपासक
भीमसेन शास्त्री

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अइउण्, ऋलृक् आदि—

प्रत्याहार-सूत्रों का निर्माता कौन ?

——: :o: :——

अ इ उ ण् ॥१॥ ऋ लृ क् ॥२॥ ए ओ ङ् ॥३॥ ऐ औ च् ॥४॥ ह य व र ट् ॥५॥ ल ण् ॥६॥ ञ म ङ ण न म् ॥७॥ झ भ ञ् ॥८॥ घ ढ ध ष् ॥९॥ ज ब ग ड द श् ॥१०॥ ख फ छ ठ थ च ट त व् ॥११॥ क प य् ॥१२॥ श ष स र् ॥१३॥ ह ल् ॥१४॥

ये चौदह सूत्र पाणिनीय-सूत्रशैली के सुदृढ़तम स्तम्भ हैं। सूत्रशैली का प्रारम्भ भारत में कब हुआ? यह विवादास्पद है। परन्तु इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि लगभग ७००ईसापूर्व पाणिनि की अष्टाध्यायी में यह शैली पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी[1]। पाणिनि ने जिन चमत्कृतिपूर्ण विधाओं को लेकर अपनी सूत्रशैली को विकसित तथा उन्नत किया, उन में इन प्रत्याहारसूत्रों तथा प्रत्याहारशैली का अपना प्रमुख स्थान है। इन के कारण ही पाणिनीयव्याकरण इतना लघुकाय, गागर में सागर तथा गौरवपूर्ण बन सका है। सच पूछिये तो प्रत्याहारों के विना पाणिनि का शास्त्र बहुत लम्बा और कभी न मिटने वाला शिरोव्यथन बन जाता। यदि प्रत्याहार न होते तो— **इको यणचि** (६.१.७४), **हशि च** (६.१.११०), **झलां जशोऽन्ते** (८.२.३९), **पुमः खय्यम्परे** (८.३.६), **नश्छव्यप्रशान्** (८.३.७), **अचो रहाभ्यां द्वे** (८.४.४५), **अनचि च** (८.४.४६), **झलां जश्झशि** (८.४.५२), **खरि च** (८.५.५४), **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** (८.२.३७) आदि सूत्रों का रूप कितना लम्बा, भयावह और झमेलापूर्ण हो जाता—इस की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पाणिनि की इस उपलब्धि को उस के उत्तरवर्ती तन्त्रान्तरप्रणेता वैयाकरण भी झुठला नहीं सके। कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, जैन शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, मुग्धबोध, सारस्वत आदि प्रायः सब व्याकरणों में इस का अनिवार्यरूप से आश्रय किया गया है[2]। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में प्रत्याहारों का शतशः प्रयोग किया है। यही अवस्था उस के उत्तरवर्ती वैयाकरणों की भी है। पाणिनि की अष्टाध्यायी का इतना सुबोध और सुलभ कलेवर इसी उपलब्धि के कारण ही बन पाया है।

---

१. पाणिनि के काल के लिये देखें—लघुसिद्धान्तकौमुदी **भैमीव्याख्या** प्रथमभाग (द्वितीय-संस्करण) का 'आत्मनिवेदनम्'।

२. इन व्याकरणों में प्रयुक्त प्रत्याहारसूत्रों के लिये इस ग्रन्थ के अन्त में देखें परिशिष्ट (१—१९)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाणिनि की इस चमत्कृति को देख कर सहजभाव से एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जिन प्रत्याहारों के कारण पाणिनि ने अपने शास्त्र को इस प्रकार चमत्कृत बना दिया क्या यह प्रत्याहारशैली और ये प्रत्याहारसूत्र पाणिनि की अपनी सूझ हैं या किसी अन्य पूर्ववर्त्ती मनीषी की ? वस्तुतः पाणिनि ने अपने से पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों से कितनी तथा किस प्रकार की सामग्री प्राप्त की, अथवा कितनी तथा कौन सी सामग्री उस की स्वोपज्ञ है---इस का निर्णय तो शायद कभी न हो सकेगा । कारण कि उन से पूर्वकालीन आपिशलि, भारद्वाज, गार्ग्य, शाकटायन आदि वैयाकरणों की सब कृतियां अब कालकवलित हो चुकी हैं[१] । पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में अपने से पूर्वभावी कई वैयाकरणों का आदरपूर्वक स्मरण किया हैं[२] । कुछ का गणपाठ में भी उल्लेख किया है[3] । इन के अतिरिक्त भी उन से पूर्व कितने ही वैयाकरण हो चुके थे जिन का विवेचन कई मनीषियों द्वारा किया गया अन्यत्र देखा जा सकता है[४] । वृद्धि, गुण, अनु-

---

१. इसी आशय को जर्मनी के विद्वान् पालथीमे के शब्दों में देखें—

It will be long before we understand, if indeed we ever come to do so, what and how much of it is पाणिनि's own in addition to the work of his grammatical predecessors.

(Panini and the Veda, by Paul Thieme)

२. तृषि-मृषि-कृशेः काश्यपस्य (१.२ २५) ।
अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा (३.४.१८) ।
उदीचां माङो व्यतीहारे (३.४.१९) ।
लङः शाकटायनस्यैव (३.४.१११) ।
गिरेश्च सेनकस्य (५.४.११२) ।
वा सुप्यापिशलेः (६.१.८९) ।
अवङ् स्फोटायनस्य (६.१.११९) ।
ई३ चाक्रवर्मणस्य (६.१.१२६) ।
ऋतो भारद्वाजस्य (७.२.६३) ।
आद् आचार्याणाम् (७.३.४९) ।
अड् गार्ग्य-गालवयोः (७.३.९९) ।
अदः सर्वेषाम् (७.३.१००) ।
लोपः शाकल्यस्य (८.३.१९) ।
ओतो गार्ग्यस्य (८.३.२०) ।
यजुष्येकेषाम् (८.३.१०४) ।

३. यथा तौल्वल्यादिगण में पौष्करसादि का तथा छात्त्यादिगण में व्याडि का उल्लेख है ।

४. देखें—यु० मीमांसककृत 'संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, अध्याय तृतीय' ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नासिक, संयोग, सवर्ण, संख्या, सर्वनाम, प्रगृह्य, विभक्ति, अव्यय, सम्प्रसारण, प्रत्याहार, प्रातिपदिक, पद, धातु, कारक, परस्मैपद आत्मनेपद, संहिता, समास, प्रकृति, प्रत्यय, कृत्, तद्धित, अपृक्त, अभ्यास, अभ्यस्त, आम्रेडित, विभाषा, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, आमन्त्रित, सार्वधातुका, आर्धधातुका—इत्यादि दर्जनों संज्ञाएं पाणिनि से पूर्व ही वैयाकरणों में प्रचलित हो चुकी थीं[1]। जब यह स्थिति सामने आती है तो यह जिज्ञासा और भी बलवती हो उठती है कि क्या यह प्रत्याहारशैली अथवा ये प्रत्याहारसूत्र पाणिनि के स्वोपज्ञ हैं या पूर्वोपज्ञ ? इस विषय का अभी तक किसी ने सविस्तर विवेचन नहीं किया। यद्यपि सब से प्रथम दण्डिस्वामिविरजानन्द के सुप्रख्यात शिष्य, आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामिदयानन्दसरस्वती ने इस विषय का सुचारु मार्गदर्शन तथा उन के अनुयायी डा० रघुवीर, आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक आदियों ने इस की भलीभांति व्याख्या भी प्रस्तुत की है तथापि समग्र उपलब्ध प्रमाणों के आलोक में इस का अभी तक पूरा-पूरा आलोडन नहीं हो पाया है। अब इस लघु शोधनिबन्ध में आज तक की उपलब्ध नवीन तथा प्राचीन सामग्री का यथामति आश्रय करते हुए इस विषय पर गम्भीर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है इस से अनुसन्धानप्रेमी पाठकों को अवश्य ही प्रोत्साहन मिलेगा और वे इस से आगे अनुसन्धानकार्य में प्रवृत्त होंगे।

इस विषय पर सब से प्रथम आजकल के बहुप्रचलित मत को लेते हैं। यह मत पाणिनीयशिक्षा के --

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥ (श्लोक ५७)

(जिस ने महेश्वर अर्थात् महादेव से अक्षरसमाम्नाय=प्रत्याहारसूत्रों को पा कर सम्पूर्ण व्याकरण को कहा, उस पाणिनि को नमस्कार हो) इस श्लोक पर आधारित है[2]। इस का अधिक विवेचन नन्दिकेश्वरप्रणीत काशिका में किया गया

---

१. देखें — संस्कृतशास्त्रों का इतिहास (आचार्यबलदेव उपाध्याय), चतुर्थपरिच्छेद।

२. यहां यह ध्यातव्य है कि पाणिनिशिक्षा के नाम से प्रसिद्ध इस श्लोकात्मिका शिक्षा को महाभाष्यकार तथा काशिकाकार सरीखे प्राचीन वैयकरणों में से कोई भी उद्धृत नहीं करता। किञ्च यदि यह पाणिनि की रचना होती तो इस के आदि में **अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा** तथा अन्त में **येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः। तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः** इस प्रकार के स्तुतिवचन न होते। इस से स्पष्ट है कि यह किसी अन्य की कृति है।

षड्गुरुशिष्य कात्यायनसर्वानुक्रमणी की व्याख्या करते हुए अपनी वेदार्थदीपिका में लिखते हैं—**तथा च सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन 'क्वचिन्नवकाश्चत्वारः' इति** (आक्सफोर्ड संस्करण पृष्ठ ७०)। अर्थात् पाणिनि के अनुज (कनिष्ठ भ्राता) भगवान् पिङ्गल ने **क्वचिन्नवकाश्चत्वारः** सूत्र बनाया है। यह सूत्र पिङ्गल के छन्दःसूत्र में (३.३३) पर पढ़ा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है। नन्दिकेश्वरकाशिका २६ श्लोकों का एक लघुकाय ग्रन्थ है। इस पर उपमन्युनामक किसी व्यक्ति की तत्त्वविमर्शिनी नाम की टीका भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ का उल्लेख किसी प्राचीन ग्रन्थ में कहीं नहीं मिलता। भट्टोजिदीक्षित ने यद्यपि प्रत्याहारसूत्रों को **माहेश्वराणि** तो कहा है परन्तु नन्दिकेश्वरकाशिका का कहीं उल्लेख तक नहीं किया। सिद्धान्तकौमुदी की तत्त्वबोधिनी टीका में ज्ञानेन्द्रस्वामी भी इस का कहीं निर्देश नहीं करते (इस से भी अधिक आश्चर्यकर यह है कि वे तत्त्वबोधिनी में **माहेश्वराणि** की व्याख्या ही नहीं करते)। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम निर्देश नागेशभट्ट ने अपने लघुशब्देन्दुशेखर, बृहच्छब्देन्दुशेखर तथा महाभाष्यप्रदीपोद्द्योत में किया है। नन्दिकेश्वरकाशिका के आदि में यह श्लोक पढ़ा गया है—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान् एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥[1]

अर्थात् सनक, सनन्दन आदि अनेक मुनि स्वस्वप्रयोजन की सिद्धि के लिये शिवजी की आराधना कर रहे थे, इन में पाणिनि भी एक थे। शिव ने अपने नृत्य के अनन्तर इन सनक आदियों के उद्धार की इच्छा से चौदह बार डमरू बजाया। इस से सनक आदियों ने जहां तत्त्वज्ञान प्राप्त किया वहां पाणिनि ने **अइउण्** आदि चौदह सूत्र प्राप्त कर अपने व्याकरण को रचा। इस प्रकार इन सूत्रों का कर्त्ता या उपदेष्टा

'बनारस संस्कृत सीरीज़' के शिक्षासंग्रह में 'ऋग्वेदीय पाणिनीयशिक्षा' पर 'शिक्षा-प्रकाश' नाम की एक व्याख्या मुद्रित है। इस का कर्त्ता सम्भवतः यादवप्रकाश या हलायुध है। इस व्याख्या के आरम्भ में यह दूसरा श्लोक पढ़ा गया है—**व्याख्याय पिङ्गलाचार्यसूत्राण्यादौ यथायथम्। शिक्षां तदीयां व्याख्यास्ये पाणिनीयानुसारिणीम्।** इसी प्रकार आगे—**ज्येष्ठभ्रातृभिर्विहिते व्याकरणेऽनुजस्तत्रभवान् पिङ्गलाचार्यस्तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते** (पृष्ठ १)। इन वचनों के अनुसार यदि यह शिक्षा पाणिनि के अनुज पिङ्गल द्वारा प्रणीत मान भी ली जाये तो भी समस्या शान्त नहीं होती। क्योंकि तब भी भाष्य आदि प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों में इस का कहीं उल्लेख क्यों नहीं हुआ? यह प्रश्न वैसे का वैसा अनुत्तरित रहता है। अतः यह किस की कृति है—यह विषय अभी और अधिक अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है (देखें शोधग्रन्थ **न्यासपर्यालोचन पृष्ठ ४७**)।

१. 'ननाद' इत्यत्रान्तर्भावितण्यर्थः। नादयामासेत्यर्थः। विमर्शे—विचार्याहं स्फुटीकरोमीति भावः। मृशतेः परस्मैपदित्वाद् व्यत्ययेन आत्मनेपदे उत्तमपुरुषैकवचनस्य इटो ङित्वाद् गुणाप्राप्तावपि व्यत्ययेन गुणः। अथवा सप्तम्यन्तमेतत् पदम्। विमर्शे=विचारे कृते सति प्रतीम इति शेषः। ध्यातव्यं यदनेकेऽर्वाचीना ग्रन्थकाराः स्वग्रन्थान् आर्षान् साधयितुं स्वकृतिषु व्याकरणविरुद्धान् प्रयोगान् प्रयुञ्जते। इहाप्येषा युक्तिरास्थितेति प्रतीयते।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

महेश्वर अर्थात् शिव है, इसलिये इन सूत्रों को माहेश्वरसूत्र या शिवसूत्र कहा जाता है। जैसाकि भट्टोजिदीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में लिखा है—

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसञ्ज्ञार्थानि ।

अर्थात् ये चौदह सूत्र माहेश्वर—महेश्वरादागतानि —महादेव से पाणिनि को प्राप्त हुए हैं।

नन्दिकेश्वरकाशिका में यह भी कहा गया है कि इन चौदह सूत्रों के अन्त्य ण्, क्, ङ्, च् आदि वर्ण केवल पाणिनि आदि के शास्त्र के उद्देश्य से ही महादेवजी ने बनाये हैं। तथाहि—

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम् ।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये ॥

अर्थात् इन सूत्रों में अन्त्य चौदह वर्ण (ण्, क्, ङ्, च् आदि) पाणिनि आदि मुनियों के धातुमूलक व्याकरण के निर्माण की सिद्धि के लिये जोड़े गये हैं।

इस विषय पर नागेशभट्ट ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—

ननु चतुर्दशसूत्र्यामक्षरसमाम्नाय इतिव्यवहारानुपपत्तिराम्नायसमाम्नायशब्दयोर्वेद एव प्रसिद्धेरित्यत आह—माहेश्वराणीति । महेश्वरादागतानीत्यर्थः । महेशप्रसादलब्धानीति फलितम् । एवञ्चैवमानुपूर्वीका श्रुतिरेवैषा तत्प्रसादात् पाणिनिना लब्धा । श्रुतिमूलकत्वादस्यैव वेदाङ्गत्वम् । अत्र प्रमाणम्—येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः । इति शिक्षावचनम् । लण्सूत्रे णकारविषयाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति व्याख्यानत इति इत्यादावाचार्यपदेन महेश्वरः । अनुबन्धाश्च महेश्वरकृता एवेत्यनुपदं स्फुटीभविष्यति । ञमङणनम् इत्यत्र मकारप्रत्याख्यानपरं भाष्यं तु किमदृष्टार्थमेव तदुच्चारणमुत दृष्टार्थमपि इत्येवंविचारपरम् । सर्वत्र प्रत्याख्यानमेवम्परमेव । अन्यथाऽङ्गानामपि पारायणे धर्मश्रवणेन तत्र तत्र पाणिन्यासप्रत्याख्यानस्याप्यसंगतिः स्यात् । तदुक्तम् इको यणचीति सूत्रे —सामर्थ्ययोगान्न हि किञ्चिदत्र पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यादिति । किञ्चिद् दृष्टादृष्टार्थवत् किञ्चिच्छुद्धादृष्टार्थवत्, सर्वथाऽनर्थकं न किञ्चिदिति तदर्थः ।

(लघुशब्देन्दुशेखरे प्रत्याहारसूत्रव्याख्याने)

'अथ लृकारोपदेशः किमर्थः' इति ऋलृक्सूत्रस्थभाष्यप्रतीकव्याख्याने प्रदीपोद्द्योते—

यद्यप्येतच्चतुर्दशसूत्रीविवृतौ नन्दिकेश्वरकृतकाशिकायाम् अनेकेषामृषीणां नानाविधार्थजिज्ञासायां शिवेन सर्वजिज्ञासानिवृत्तये एषा ढक्कानिनादेन प्रकाशितेत्युक्तमितीदमनुपपन्नं तथापि पाणिन्युद्देश्यकं फलमस्ति नवेत्येतत् तात्पर्यम् । अन्त्यवर्णचतुर्दशं तु पाणिन्युद्देशेनैवोपदिष्टमित्यपि तत्रैव स्पष्टम् ।

पाणिनिशास्त्रप्रवृत्त्यर्थं उपदेश इत्युक्ते उपदेशे गुरुकर्तृकतायाः स्वरसतः प्रतीतेः । सिद्धोच्चारणेऽपि मन्त्रोपदेश इत्यादावुपदेशव्यवहारात् । अनुबन्धकरणार्थं इत्यत्र करणपदेन इतरस्य सिद्धत्वसूचनात् । तत्करणं चोपदेशकर्तृकर्तृकत्वमेव प्रत्यासत्तेरित्याहुः ।

(महाभाष्यप्रदीपोद्द्योते गुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण पृष्ठ ७३)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन उद्धरणों से नागेशभट्ट का यह आशय है कि ये सूत्र शिवजी द्वारा निर्मित नहीं अपितु उपदिष्ट हैं। जैसे शिष्य को मन्त्र का उपदेश करने वाला गुरु केवल मन्त्र का उपदेष्टा ही होता है निर्माता नहीं, इसी प्रकार शिवजी भी पाणिनि को सूत्र देने में केवल उपदेष्टा ही हैं सूत्रों के निर्माता नहीं। ये सूत्र तो अनादि हैं। इन का कर्त्ता (निर्माता) कोई पुरुष नहीं, वेद की तरह ये अपौरुषेय हैं। नागेश का यह भी कथन है कि इन चौदह सूत्रों के अन्त्य चौदह वर्ण शिवजी ने केवल पाणिनि के व्याकरण की सिद्धि के लिये ही स्वयं जोड़े हैं[1] अतः अनुबन्धों से रहित सूत्रों का शेष भाग ही अनादि है अनुबन्ध नहीं। भाष्य में जहां जहां इन सूत्रों का प्रत्याख्यान (जैसाकि भाष्यकार ने **ञमङणनम्** सूत्र के मकार का खण्डन कर **ञमङणनझभञ्** इस प्रकार एक ही सूत्र बनाने को कहा है) उपलब्ध होता है वहां वहां भाष्यकार का यह आशय समझना चाहिये कि ये अनुबन्ध क्या केवल अदृष्ट प्रयोजन के लिये हैं या दृष्ट अदृष्ट दोनों के लिये? क्योंकि यह व्याकरण वेद का अङ्ग है, वेदाङ्गों के यथावत् पारायण (पाठ) में अदृष्ट अर्थात् पुण्य का लाभ तो सर्वत्र होता ही है परन्तु इस के साथ साथ प्रकृतव्याकरण के लिये भी इन का कोई उपयोग है या नहीं—यह जांचना वहां भाष्य का आशय है। इसी प्रकार भाष्यकार ने जहां जहां पाणिनिसूत्रों या सूत्रांशों का प्रत्याख्यान या खण्डन किया है वहां पर भी उन का यही आशय समझना चाहिये। अत एव भाष्यकार जहां एक तरफ सूत्रों या सूत्रांशों का प्रत्याख्यान करते हैं वहां दूसरी ओर यह भी कहते हैं—**सामर्थ्ययोगान्न हि किञ्चिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्** (महाभाष्य ६.१.७४)—मैं योगसामर्थ्य से स्पष्ट देख रहा हूं कि इस शास्त्र में कुछ भी अनर्थक नहीं है।

---

१. नागेशभट्ट का ऐसा समझना नितान्त अनुचित है। नन्दिकेश्वरकाशिका में 'पाणिन्यादीष्टसिद्धये' कहा गया है। अतः नागेश का 'पाणिन्यादि' से 'पाणिनि ही' समझना युक्त नहीं कहा जा सकता। अत एव महाभाष्य के राजलक्ष्मी-टीकाकार गुरुप्रसादशास्त्री को यहां कहना ही पड़ा है—**तत्र च पाणिन्यादीत्यादि-पदोपादानात् पाणिन्युद्देश्येनैव इत्येवकारासङ्गतिरिति गौडाः** (पृष्ठ ९८, ऋलृक् सूत्रस्थभाष्ये)। शेखर के कुछ टीकाकारों ने 'आदि' शब्द से शाकटायन आदियों का ग्रहण माना है। यह और भी आपत्तिजनक है क्योंकि शाकटायन तो पाणिनि से बहुत पूर्वकालीन आचार्य हैं। पाणिनि ने **लङः शाकटायनस्यैव** (३.४.१११) सूत्र में उन के मत का भी निर्देश किया है। उपमन्यु ने नन्दिकेश्वरकाशिका के प्रथम श्लोक के व्याख्यान में शिवजी के ढक्कानिनाद के समय उपस्थित सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और पाणिनि आदि के साथ पतञ्जलि की भी गणना कर रखी है। भला कहां पाणिनि का काल और कहां पतञ्जलि का काल—इन दोनों आचार्यों की कालसम्बन्धी भिन्नता उपमन्यु की दृष्टि में कुछ है ही नहीं। निश्चय ही उपमन्यु इतिहासवेत्ताओं की दृष्टि में दया का पात्र है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नागेशभट्ट के समान अन्य भी अनेक उत्तरकालीन वा आधुनिक विद्वान् प्रत्याहारसूत्रों के विषय में ऐसी ही धारणा रखते वा व्याख्या करते हैं। हां कुछ लोगों का कथन है कि इन सूत्रों में अनुबन्ध पाणिनि ने ही स्वशास्त्रप्रवृत्ति के लिये प्रत्याहार बनाने के लिये लगाये हैं। शेष अंश में वे भी नागेशभट्ट की तरह मन्तव्य रखते हैं[1]।

अब हम नानाविध प्रमाणों के आलोक में बहुप्रचलित इस मत की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं—

ये सूत्र महादेव के डमरू बजाने से पाणिनि को प्राप्त हुए—इस का उल्लेख दसवीं शताब्दी तक के किसी ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया। कात्यायन के वार्त्तिकपाठ, पतञ्जलि के महाभाष्य, भर्तृहरि की महाभाष्यदीपिका और वाक्यपदीय, जयादित्यवामन की काशिकावृत्ति, जिनेन्द्रबुद्धि के न्यास तथा कैयटकृत प्रदीप आदि प्राचीन ग्रन्थों में इन को कहीं भी शिवप्रोक्त या माहेश्वर आदि नहीं कहा गया अपितु सर्वत्र पाणिनिप्रोक्त या निर्मित ही कहा और माना गया है। इस विषय में सब से प्रथम हम भाष्य के कुछ प्रसङ्ग उपस्थित करते हैं—

[१] भाष्यकार पतञ्जलि **अइउण्** सूत्र की व्याख्या करते हुए प्रश्न उठाते हैं—

किं पुनरिदं विवृतस्योपदिश्यमानस्य प्रयोजनमन्वाख्यायते,
आहोस्वित् संवृतस्योपदिश्यमानस्य विवृतोपदेशश्चोद्यते ?

अर्थात् क्या **अइउण्** सूत्र में अकार का विवृतोपदेश किया गया था और अब उस के प्रयोजन बताये जा रहे हैं या संवृत उपदिष्ट किये जाने पर अब इसे विवृत किया जा रहा है ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भाष्यकार कहते हैं—

विवृतस्योपदिश्यमानस्य प्रयोजनमन्वाख्यायते।

अर्थात् **अइउण्** में अकार का उपदेश तो विवृत किया गया था अब यहां उस के प्रयोजन बताये जा रहे हैं।

इस पर प्रश्नकर्त्ता पुनः पूछता है—

कथं ज्ञायते ?

अर्थात् आप को यह कैसे मालूम हुआ कि इस का उपदेश तो विवृत किया गया था न कि संवृत ?

---

१. **केचित्तु—अनुबन्धाः पाणिनिकृता एव। धात्वर्थं समुपादिष्टम्—इतिवाक्यघटक-समुपादिष्टमित्यस्य अनुबन्धा एवमासक्तव्या इति महेश्वरेणोपदिष्टमित्यर्थः। अत एव भाष्यकारकृतमकारप्रत्याख्यानं सङ्गच्छते। अन्यथा सर्वविश्वेश्वरमहेश्वरकृता-ऽनुबन्धखण्डनम् असङ्गतं स्याद्—इत्याहुः।**

(लघुशब्देन्दुशेखर भैरवीटीका, पृष्ठ ८ पर फुटनोट)

विषमपदविवृतिकार ने भी ऐसा ही लिखा है (देखिये पृष्ठ २२, गुरुप्रसादशास्त्रि-संस्करण)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस पर भाष्यकार उत्तर देते हैं—

यद् अयम्—अ अ (८.४.६७) **इत्यकारस्य विवृतस्य संवृतताप्रत्यापत्ति शास्ति।**

अर्थात् क्योंकि यह **अ अ** (८.४.६७) सूत्र के द्वारा विवृत अकार को पुनः संवृत स्थापित करता है इस से सिद्ध होता है कि इस ने अकार को विवृत ही उपदिष्ट किया था।

यहां पर **यद् अयम्** शब्दों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। 'अयम्' पद 'शास्ति' क्रिया का कर्त्ता है। अष्टाध्यायी के अन्तिमसूत्र **अ अ** (८.४.६७) का शासन पाणिनि ने ही किया है अतः 'अयम्' पद से उस का ही ग्रहण अभीष्ट है। 'यत्' पद के प्रयोग के कारण पूर्वनिर्दिष्ट 'उपदिश्यमानस्य' का कर्त्ता भी पाणिनि ही होगा दूसरा नहीं, अन्यथा 'यत्' पद का प्रयोग व्यर्थ हो जायेगा। इस के प्रयोग का केवल यही तात्पर्य है कि क्योंकि इस ने शास्त्र के अन्त में विवृत अकार को पुनः संवृत का दर्जा दिया है अतः इस ने **अइउण्** में अकार को भी विवृत पढ़ा है। इस से यह सुतरां सिद्ध हो जाता है कि भाष्यकार की दृष्टि में जो **अ अ** (८.४.६७) सूत्र को बनाने वाला है वही **अइउण्** के अकार को विवृतोपदेश करने वाला भी है। **अ अ** (८.४.६७) सूत्र अष्टाध्यायी का अन्तिमसूत्र है, इसे बनाने वाला आचार्य पाणिनि ही निर्विवाद है। अतः **अइउण्** का उपदेश करने वाला भी भाष्य के मतानुसार स्पष्टतः पाणिनि ही ठहरता है।

वैयाकरणमूर्धन्य भर्तृहरि ने महाभाष्य के इस स्थल की व्याख्या करते हुए पाणिनि के नाम का स्पष्ट उल्लेख कर यही बात कही है—

किमिदमपूर्वं पाणिनिना विवृतत्वम् अकृतम् उपसंख्यायते उत कृतस्य अन्वाख्यानमिति, यदयम् 'अ अ' (८.४.६७) **इति प्रत्यापत्तिं शास्ति। यदीह संवृत एवाकारः प्रतिज्ञातः स्यात् किं तस्य प्रत्यापत्त्या। तत्र प्रत्यापत्तिवचनादवसीयते विवृतोऽकार इति।**

(महाभाष्यदीपिका पूनासं० पृष्ठ ४९)

यहां पर स्पष्ट भर्तृहरि ने पाणिनि के नाम का निर्देश किया है। केवल यहां पर ही नहीं बल्कि इस प्रकरण के अन्त में इस सम्पूर्ण भाष्यांश का सार देते हुए भी वे स्पष्टतः पाणिनि के नाम का उल्लेख करते हैं—

तस्मात् पाणिनिरेव विवृतत्वं प्रतिजानीते—इत्यस्यैव लिङ्गं प्रत्यापत्तिः।

(महाभाष्यदीपिका पूनासं० पृष्ठ ५०)

अर्थात् प्रत्यापत्ति से यही सिद्ध होता है कि पाणिनि ने ही **अइउण्** सूत्र में अकार को विवृत पढ़ा है।

[२] **ऐऔच्**—सूत्र के महाभाष्य में एक श्लोकवार्तिक पढ़ा गया है—

प्रत्याहारेऽनुबन्धानां कथमज्ग्रहणेषु न।
आचारादप्रधानत्वाल्लोपश्च बलवत्तरः॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थात् अच् आदि प्रत्याहारों में अनुबन्धों का ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस के लिये वार्त्तिककार ने यहां तीन हेतु दिये हैं। (१) आचारात्, (२) अप्रधानत्वात्, (३) लोपश्च बलवत्तरः। इन में से प्रथम हेतु 'आचारात्' की व्याख्या करते हुए भाष्यकार लिखते हैं—

एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत् तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति, अचोऽक्षु हलो हल्षु इति।

अर्थात् आचार्य की यह शैली देखी जाती है कि वे अचों का अचों में और हलों का हलों में उपदेश करते हैं। महाभाष्य में 'आचार्य' पद पाणिनि या कात्यायन के लिये ही प्रयुक्त हुआ है—

पाणिनि के लिये यथा—

(१) **कथम्पुनरिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम्।** (महाभाष्य पस्पशा)

(२) **प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचाववकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता यत्नेन सूत्रं प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाऽप्यनर्थकेन भवितुम्, किम्पुनरियता सूत्रेण।** (महाभाष्य १.१.१)

(३) **उभयथा ह्याचार्येण शिष्याः सूत्रं प्रतिपादिताः। केचिदाकडारादेका संज्ञेति। केचित् प्राक्कडारात् परं कार्यमिति।** (महाभाष्य १.४.१)

कात्यायन के लिये यथा—

(१) **पुरस्तादिदमाचार्येण दृष्टम् 'भवे च तद्धितः' इति। तत् पठितम्। तत उत्तरकालमिदं दृष्टम् 'प्रोक्तादयश्च तद्धिताः' इति। तदपि पठितम्। न चेदानीमाचार्याः सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति।** (महाभाष्य पस्पशा)

(२) **माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते।** (महाभाष्य पस्पशा)

(३) **तेभ्य एवं विप्रतिपन्नबुद्धिभ्योऽध्येतृभ्यः सुहृद्भूत्वाऽऽचार्यः शास्त्रमन्वाचष्टे। इमानि प्रयोजनानि अध्येयं व्याकरणमिति[1]।** (महाभाष्य पस्पशा)

---

१. यहां 'आचार्यः' पद से कात्यायन का ही ग्रहण अभीष्ट है। यहां यह ध्यातव्य है कि **रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्** इसे भाष्यकार का वचन समझते हुए नागेशभट्ट ने जो यहां **आचार्यपदेन शास्त्राध्यापको भाष्यकृदेव विवक्षितः** ऐसा लिखा है वह नितान्त चिन्त्य है। क्योंकि कोई भी आर्षग्रन्थप्रणेता अपने आप को 'आचार्य' पद से अलङ्कृत करे—यह सम्भव नहीं। अत एव महाभाष्य के संपादक गुरुप्रसादशास्त्री यहां स्वकीयराजलक्ष्मीव्याख्या में नागेश का खण्डन करते हुए लिखते हैं—

भाष्यकृदेवेति। परे तु वार्त्तिककृदुक्तान्येवैतानि प्रयोजनानीत्याचार्यपदेन वार्त्तिककृदेव भाष्यकृतोऽभिप्रायः। भगवताऽऽत्मन आचार्यपदेन क्वापि व्यवहारस्या-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रकृत में कात्यायन के श्लोकवार्त्तिक के प्रसङ्ग में 'आचार्य' पद से कात्यायन का ग्रहण तो हो नहीं सकता अतः निःसन्देह इस से आचार्य पाणिनि का ही ग्रहण अभिप्रेत है। इस से सुतरां सिद्ध हो जाता है कि आचार्य पाणिनि ने ही इन प्रत्याहार-सूत्रों का उपदेश किया है।

[३] प्रत्याहारसूत्रों में णकार अनुबन्ध दो स्थानों पर जोड़ा गया है। एक **अइउण्** सूत्र में तथा दूसरा **लण्** सूत्र में। यहां पर भाष्यकार प्रश्न उठाते हुए कहते हैं—

किं पुनर्वर्णोत्सत्ताविवायं णकारो द्विरनुबध्यते ?

अर्थात् क्या अन्य वर्णों का उच्छेद हो गया था जो णकार को दो बार अनुबद्ध किया गया है? इस से अण्-इण् प्रत्याहार वाले सूत्रों में महती भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है कि कहां प्रत्याहार पूर्व णकार से लेना चाहिये और कहां परले णकार से? इस पर भाष्यकार विचार करते हुए अन्त में एक वार्त्तिक पढ़ कर उत्तर देते हुए लिखते हैं—

व्याख्यानाच्च द्विरुक्तितः। एतज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा—व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणमिति।

अर्थात् आचार्य ने णकार अनुबन्ध इसलिये दुबारा जोड़ा है कि वे यहां एक परिभाषा ज्ञापन कराना चाहते हैं—**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्** (व्याख्यान के द्वारा ही विशेष बात का निश्चय कर लेना चाहिये केवल सन्देहमात्र से लक्षण=शास्त्र को अलक्षण नहीं समझना चाहिये)। यहां पर 'आचार्य' पद से निस्सन्देह आचार्य पाणिनि का ही ग्रहण अभिप्रेत है क्योंकि इस व्याकरण में सूत्रों द्वारा परिभाषाओं का ज्ञापन वे ही कराते हैं। तुलना करें—

करणात्। आचार्यपदेन भाष्ये सूत्रवार्त्तिककारयोरेव प्रायो ग्रहणात्। आत्मनस्तु 'गोनर्दीयस्त्वाह' इत्यादिरीत्या भाष्यकृतो व्यवहारस्य प्रसिद्धत्वान्नागेशोक्तं न युक्तमित्याहुः।

ध्यान रहे कि **रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्** यह कात्यायन का ही प्रथम वार्त्तिक है भाष्यकार का वचन नहीं। सायणाचार्य ने अपने वेदभाष्य में भी इसे ऐसा ही माना है—

कात्यायनोऽपि व्याकरणप्रयोजनान्युदाजहार—रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।
(तैत्तिरीयसंहिता, सायणभाष्यारम्भे)

सायण ने ऋग्वेद के अपने उपोद्घात में भी इसे वार्त्तिक ही माना है—

तस्यैतस्य व्याकरणस्य प्रयोजनविशेषो वररुचिना वार्त्तिके दर्शितः—रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम् इति। एतानि रक्षादीनि प्रयोजनानि प्रयोजनान्तराणि च महाभाष्ये पतञ्जलिना स्पष्टीकृतानि।

(ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पूना संस्करण, प्रथम भाग पृष्ठ २६)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(क) तज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा— भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न। (महाभाष्य १.१.६९)

(ख) तज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा—कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापीति। (महाभाष्य ६.२.४९)

(ग) तज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा—असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गलक्षण इति। (महाभाष्य ६.४.१३२)

(घ) तज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत एते परिभाषे—अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य। तदनुबन्धकग्रहणे नाऽतदनुबन्धकस्य ग्रहणमिति। (महाभाष्य ४.२.९)

(ङ) तज्ज्ञापयत्याचार्योऽस्त्येषा परिभाषा—नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वं भवतीति। (महाभाष्य १.१.५५)

(च) एतज्ज्ञापयत्याचार्यो भवत्येषा परिभाषा—एकदेशविकृतमनन्यवद् भवतीति। (महाभाष्य ४.१.८३)

(छ) एतज्ज्ञापयत्याचार्योऽन्यत्र संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्न भवतीति। (महाभाष्य १.४.१४)

इस से सुतरां सिद्ध हो जाता है कि प्रत्याहारसूत्रों में अनुबन्धों का प्रयोग आचार्य पाणिनि ने ही किया है[1]।

[४] भाष्यकार ने पस्पशाह्निक में **अइउण्** आदि सूत्रों पर एक सरल सा प्रश्न किया है कि लोकप्रसिद्ध क्रम को छोड़ कर अ इ उ इत्यादि क्रमविशेष से वर्णों

---

१. र प्रत्याहार को मानने वाले दीक्षित आदि लण् सूत्र में लकारोत्तर अकार की **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** (१.३.२) सूत्र से इत्संज्ञा कर रप्रत्याहार की सिद्धि किया करते हैं। लण्सूत्रस्थ लकरोत्तर अकार को अनुनासिक कैसे मानें ? इस विषय में वे **प्रतिज्ञाऽऽनुनासिक्याः पाणिनीयाः** (अनुनासिकस्य भावः—आनुनासिक्यम्, प्रतिज्ञायत इति प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा आनुनासिक्यं येषां ते तथोक्ताः। पाणिनीयाः= पाणिनिप्रोक्ता वर्णा इत्यर्थः) का अनुसरण करते हैं। इस से उन के मत में लकारोत्तर अकार का अनुनासिकत्व पाणिनिद्वारा ही निर्दिष्ट किया गया सिद्ध होता है। परन्तु नन्दिकेश्वरकाशिका में तो पाणिनि के शास्त्र की सिद्धि के लिये प्रत्याहारसूत्रों में केवल चौदह अन्त्य वर्णों का ही महेश्वरद्वारा निर्देश कहा गया है—

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥

यह पन्द्रहवां अनन्त्य इत्सञ्ज्ञक अकार अनुबन्ध तो पाणिनि का अपना ही जोड़ा गया सिद्ध होता है। इस से उन के मत में प्रत्याहारसूत्रों में कहीं तो महेश्वरकृत अनुबन्ध माने जा रहे हैं और कहीं पाणिनिकृत। तो इस प्रकार अर्धजरतीयन्याय से उन का सम्पूर्ण मन्तव्य ही अमान्य हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के उच्चारण करने का क्या प्रयोजन है ? इस पर वे तीन वार्त्तिकों का अवतरण कर उन की व्याख्या करते हुए इस तरह लिखते हैं—

अथ किमर्थो वर्णानामुपदेशः ?

वृत्तिसमवायार्थ उपदेशः (वा०) ।

वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः ।

किमिदं वृत्तिसमवायार्थ इति ?

वृत्तये समवायो वृत्तिसमवायः । वृत्त्यर्थो वा समवायो वृत्तिसमवायः । वृत्तिप्रयोजनो वा समवायो वृत्तिसमवायः ।

का पुनर्वृत्तिः ?

शास्त्रप्रवृत्तिः ।

अथ कः समवायः ?

वर्णानाम् आनुपूर्व्येण सन्निवेशः ।

अथ क उपदेशः ?

उच्चारणम् ।

कुत एतत् ?

दिशिरुच्चारणक्रियः । उच्चार्य हि वर्णानाह—उपदिष्टा इमे वर्णा इति ।

अनुबन्धकरणार्थश्च (वा०) ।

अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः । अनुबन्धान् आसङ्क्ष्यामीति । न ह्यनुपदिश्य वर्णान् अनुबन्धाः शक्या आसङ्क्तुम् । स एष वर्णानामुपदेशो वृत्तिसमवायार्थश्चानुबन्धकरणार्थश्च । वृत्तिसमवायश्चानुबन्धकरणं च प्रत्याहारार्थम् । प्रत्याहारो वृत्त्यर्थः ।

इष्टबुद्ध्यर्थश्च (वा०) ।

इष्टबुद्ध्यर्थश्च वर्णानामुपदेशः । इष्टान् वर्णान् भोत्स्यामह इति । न ह्यनुपदिश्य वर्णान् इष्टा वर्णाः शक्या विज्ञातुम् । (महाभाष्य पस्पशा०)

अर्थात् विशिष्ट क्रम से पढ़े इन वर्णों के साथ अनुबन्ध जोड़ कर मैं प्रत्याहार बनाऊंगा और इस से इस शास्त्र की प्रवृत्ति होगी—यह सोच कर आचार्य ने यहां क्रमविशेष का आश्रय कर इन वर्णों का उच्चारण किया है। यहां ढक्कानिनाद का कोई वर्णन नहीं आया बल्कि **उच्चार्य हि वर्णानाह—उपदिष्टा इमे वर्णा इति** में उच्चारण करने का ही वर्णन है और इसे तीनों वार्त्तिकों की व्याख्या में तीन बार दोहराया गया है। अतः इस से नितान्त स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस प्रकार क्रमविशेष से आचार्य पाणिनि ने ही इन वर्णों का उपदेश अर्थात् उच्चारण किया है और इस क्रमविशेष से उच्चारण करने का प्रयोजन प्रत्याहार बनाना है ताकि इस शास्त्र की सुचारु प्रवृत्ति (रचना) हो सके। इस शास्त्र में प्रत्याहार बनाने वाला आचार्य पाणिनि ही है, अतः उस ने ही प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये इन वर्णों का उपदेश या उच्चारण किया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नागेशभट्ट को यहां आरम्भ में ही **अथ किमर्थो वर्णानामुपदेशः ?** सुनते ही अपने कल्पनाप्रसूत महल के ढह जाने की आशङ्का हुई। अत एव वे आरम्भ में ही लिखते हैं—**उपदेश इति। पाणिनये महादेवकृत इत्यर्थः।** समझ नहीं आता कि महाभाष्य के परम भक्त और पद पद पर भाष्य की दुहाई देने वाले नागेशभट्ट भाष्य में क्वचित् भी न पाये जाने वाले नन्दिकेश्वरकाशिकोक्त ढक्कानिनाद पर कैसे विश्वास और आग्रह कर बैठे। महाभाष्य के सम्पादक गुरुप्रसादशास्त्री ने यहां अतीव उपयुक्त लिखा है—

भाष्यकृदनुक्तमेषां माहेश्वरत्वं स्ववासनया नागेश आहेत्यवधेयम्।

(महाभाष्य, गु० प्र० शास्त्रि सं०, प्रथम भाग, पृष्ठ ७२)

एतेन वर्णोपदेशोऽयं पाणिनिकृत एवेति स्पष्टं लभ्यते। पाणिनये महादेवकृत इति नागेशभट्टोक्तिस्तु स्ववासनयैव न प्रमाणानुगृहीतेति।

(महाभाष्य, पूर्वोक्त संस्करण, प्रथम भाग, पृष्ठ ७३)

ध्यातव्य है कि इस स्थल की कैयटकृतव्याख्या प्रदीप में ढक्कानिनाद का किञ्चिद् आभास तक दिखाई नहीं पड़ता। कैयट की व्याख्या के एतत्स्थलीय उद्धरण हम आगे देंगे।

[५] भाष्यकार ने **ञमङणनम्, झभञ्** इन दो प्रत्याहारसूत्रों की व्याख्या के प्रसङ्ग में **ञमङणनम्** सूत्र के मकार अनुबन्ध का प्रत्याख्यान किया है। उन का यह स्पष्ट अभिमत है कि इन दोनों सूत्रों के स्थान पर **ञमङणनझभञ्** इस प्रकार एक सूत्र बना कर भी काम चल सकता है कोई दोष उत्पन्न नहीं होता[1]। पतञ्जलि का यह प्रत्याख्यान तभी उपपन्न हो सकता है जबकि ये सूत्र पाणिनिनिर्मित हों। यदि ये सूत्र महेश्वर द्वारा प्रदत्त या प्रणीत होते तो ईश्वरीय कार्य के त्रुटिरहित होने से पतञ्जलि

---

१. "**ञमङणनम्** ॥७॥ **झभञ्** ॥८॥ किमर्थमिमौ मुखनासिकावचनावुभावनुबध्येते, न ञकार एवानुबध्येत ; कथं यानि मकारेण ग्रहणानि—**हलो यमां यमि लोपः** (८.४.६३) इति ? अस्तु ञकारेण—हलो यञां यञि लोप इति। **नैवं शक्यम्**, झकारभकारपरयोरपि झकारभकारयोर्लोपः प्रसज्यते। न झकारभकारौ झकारभकारयोः स्तः। कथं—**पुमः खय्यम्परे** (८.३.६) इति ? एतदप्यस्तु ञकारेण—पुमः खय्यञ्पर इति। **नैवं शक्यम्**। झकारभकारपरेऽपि हि खयि रुः प्रसज्येत। न झकारभकारपरः खय् अस्ति। कथं—**ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्** (८.३.३२) इति ? एतदप्यस्तु ञकारेण—ङञो ह्रस्वादचि ङञुण्नित्यम् इति। **नैवं शक्यम्**, झकारभकारयोरपि हि पदान्तयोर्झकारभकारावागमौ स्याताम्। न झकारभकारौ पदान्तौ स्तः। एवमपि पञ्चागमास्त्रय आगमिनो वैषम्यात् सङ्ख्यातानुदेशो न प्राप्नोति। सन्तु तावद् येषामागमानाम् आगमिनः सन्ति। झकारभकारौ पदान्तौ न स्त इति कृत्वाऽऽगमावपि न भविष्यतः।"

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

(महाभाष्य कीलहार्न् सं० प्रथमभाग, पृष्ठ ३५-३६)

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जैसा आस्तिक मुनि इन में वेदवत् आस्था रखता । तब न तो वह इन का प्रत्याख्यान करता और न ही वार्त्तिककार कात्यायन इन सूत्रों में दो उपसंख्यान (वार्त्तिक) पढ़ने का साहस करता[1] ।

नागेशभट्ट का कथन है कि पाणिनीयव्याकरण क्योंकि वेदाङ्गों में परिगणित किया गया है अतः इस के यथास्थित पाठ से अदृष्ट (पुण्य) की प्राप्ति तो सर्वत्र होती ही है, परन्तु क्या इस प्रकार के न्यास से पाणिनीयव्याकरणविषयक कोई दृष्ट प्रयोजन भी सिद्ध होता है या नहीं ? इस दृष्टि को लेकर भाष्यकार सूत्रों की आलोचना या प्रत्याख्यान किया करते हैं । पर इस प्रकार कल्पना करना तुच्छ वा सारहीन है । क्या पाणिनीयव्याकरण से पहले वेद के छः अङ्ग न थे ? वस्तुस्थिति तो यह है कि जब पहले के व्याकरण मन्दप्रचलित या लुप्तप्राय हो गये तब मनीषियों ने वेद के अङ्ग के रूप में उस समय के बहुप्रचलित इस पाणिनीयव्याकरण को ही मान्य ठहरा लिया । अत एव हरदत्तमिश्र ने अतीव समुचित लिखा है—

कथं पुनरिदमाचार्येण पाणिनिनाऽवगतमेते साधव इति ? आपिशलेन पूर्वव्याकरणेन । आपिशलिना तर्हि केनाऽवगतम् ? ततः पूर्वेण व्याकरणेन ।

(पदमञ्जरी, द्वारिकादासशास्त्रिसंस्करण, पृष्ठ ८)

[६] **वृद्धिरादैच्** (१.१.१)सूत्रस्थ भाष्य के सञ्ज्ञा-सञ्ज्ञिप्रसङ्ग में भाष्यकार प्रश्न उठाते हुए पूछते हैं—

कुतो नु खल्वेतत् —सञ्ज्ञासञ्ज्ञिनावेवेति न पुनः साध्वनुशासनेऽस्मिञ्छास्त्रे साधुत्वमनेन क्रियते ? (महाभाष्य कीलहार्न् सं० प्रथमभाग, पृष्ठ ३९)

अर्थात् हम यहां यह क्यों समझें कि वृद्धि संज्ञा है और आदैच् संज्ञी ? यह क्यों न समझ लें कि साधुत्वप्रतिपादक इस शास्त्र में 'वृद्धि' और 'आदैच्' का साधुत्व ही प्रतिपादन किया जा रहा है ? इस पर भाष्यकार उत्तर देते हैं—

कृतमनयोः साधुत्वम् । कथम् ? वृधिरस्मै अविशेषेणोपदिष्टः प्रकृतिपाठे, तस्मात् क्तिन्प्रत्ययः । आदैचोऽपि अक्षरसमाम्नाय उपदिष्टाः ।

अर्थात् इन दोनों के साधुत्व का प्रतिपादन तो आचार्य द्वारा किया ही जा चुका है । कैसे ? धातुपाठ में **वृधु वर्धने** धातु का अध्येता के लिये साधारणतः उपदेश कर ही चुके हैं, उस से क्तिन् प्रत्यय का उपदेश भी **स्त्रियां क्तिन्** (३.३.९४) द्वारा कर रखा है, और इधर आदैच् का भी अक्षरसमाम्नाय में उपदेश कर दिया है । अतः वृद्धि और आदैच् शब्दों के साधुत्व का अनुशासन यहां अभीष्ट नहीं ।

यहां पर 'कृतम्' और दो बार निर्दिष्ट 'उपदिष्ट' क्रिया का एक ही कर्त्ता अभीष्ट है यह यहां वाक्यविन्यास से ही स्पष्ट हो रहा है । धातुपाठ में वृध् धातु का उपदेश करने वाला आचार्य पाणिनि ही सर्वसम्मत है और इसी ने ही **स्त्रियां क्तिन्**

---

१. **अयोगवाहानामट्सु णत्वम्** (वा०) । **शर्षु जश्भावषत्वे** (वा०) ।

(महाभाष्य कीलहार्न् सं० प्रथमभाग, पृष्ठ २८)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(६.३.६४) द्वारा क्तिन् प्रत्यय का भी उपदेश किया है तो इस प्रकार अक्षरसमाम्नाय में आदैच् का उपदेष्टा भी यही आचार्य पाणिनि है—यह भाष्य से सुतरां सिद्ध हो जाता है ।

[७] **हयवरट्** और **हल्** इन दोनों सूत्रों में हकार का ग्रहण प्रयोजनवशात् किया गया है । **हयवरट्** सूत्र में हकार के ग्रहण के कारण—महाँ हि सः, पुरुषो हसति आदि सिद्ध होते हैं तथा **हल्** सूत्र में इस के कारण—स्निहित्वा, स्नेहित्वा, अधुक्षत्, अलिक्षत्, रुदिहि, अदाग्धाम् आदि सिद्ध होते हैं । इस पर भाष्कार लिखते हैं—

यदि च किञ्चिदन्यत्राप्युपदेशे प्रयोजनमस्ति तत्राप्युपदेशः कर्तव्यः ।

(महाभाष्य कीलहार्न् सं० प्रथमभाग, पृष्ठ २७)

इस पर कैयट लिखते हैं-- **प्रयोजनार्थो हि वर्णानामुपदेशः, न स्वरूपप्रतिपत्त्यर्थः ।**

राजलक्ष्मीटीकाकार भी यही कहते हैं—

एवं च त्रिश्चतुर्वोपदेशस्य फलमभविष्यत्तर्हि तदप्यकरिष्यत् का कथा द्विरुपदेशस्येत्याशयः ।

इस से स्पष्टतः सिद्ध हो रहा है कि भाष्यकार यदि आवश्यकता हो तो इन सूत्रों में परिवर्त्तन करने की भी आज्ञा देते हैं । यह सब इन सूत्रों के शिवप्रोक्त होने पर सम्भव नहीं । अतः भाष्य के मत में ये सूत्र पाणिनिप्रोक्त ही हैं-- यह निर्विवाद सिद्ध होता है ।

अब हम कैयटप्रणीत प्रदीपव्याख्या के कुछ अंश उद्धृत करते हैं जिन से स्पष्ट हो जाता है कि कैयटोपाध्याय भी प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता या उपदेष्टा आचार्य पाणिनि को ही मानते थे—

[८] **अइउण्** सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में भाष्यकार ने प्रश्न उठाया है—

किम्पुनरिदं विवृतस्योपदिश्यमानस्य प्रयोजनमन्वाख्यायते आहोस्वित् संवृतस्योपदिश्यमानस्य विवृतोपदेशश्चोद्यते ?

अर्थात् क्या **अइउण्** में अकार का विवृतोपदेश किया गया था और अब उस के प्रयोजन बताये जा रहे हैं या संवृत उपदेश किये जाने पर अब उसे विवृत विधान किया जा रहा है ?

अब भाष्यकारद्वारा उत्थापित इस प्रश्न की व्याख्या कैयटप्रणीत प्रदीप में देखें—

किं सूत्रकारेणैव विवृतोपदेशः कृतो वार्त्तिककारेण तु तस्य प्रयोजनमुक्तम्, अथाकृत एव विवृतोपदेशो वार्त्तिककृता चोद्यत्वेन उपन्यस्त इति प्रश्नः ।

(महाभाष्य निर्णयसागर तृतीय सं० प्रथमभाग, पृष्ठ ७८)

अर्थात् क्या सूत्रकार ने ही विवृतोपदेश किया था और अब वार्त्तिककारद्वारा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उस के प्रयोजन बताये गये हैं अथवा सूत्रकारद्वारा न किया गया विवृतोपदेश अब वार्त्तिककार से विधान किया जाता है ? यह यहां प्रश्न है ।

यहां सूत्रकार और वार्त्तिककार का उल्लेख आया है । वार्त्तिककार के साथ सूत्रकार सदा पाणिनि ही लिया जाता है । अतः इस से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि कैयटोपाध्याय **अइउण्** आदि सूत्रों को पाणिनि की ही कृति मान रहे हैं ।

नागेशभट्ट से कुछ पूर्वभावी शिवरामेन्द्रसरस्वती ने भाष्य के इस स्थल की व्याख्या के प्रसङ्ग में रत्नप्रकाश नामक अपनी व्याख्या में कैयट का यही आशय स्वीकार कर उस की कड़े शब्दों में आलोचना की है—

किम्पुनरिति । महादेवेनैवात्राकारो विवृत उपदिष्टस्तस्य वार्त्तिककारेण प्रयोजनमात्रमन्वाख्यायते वा, वार्त्तिककारेणैव महादेवोपदिष्टस्य संवृतस्य विवृतोपदेशः सप्रयोजनः कर्त्तव्यतया बोध्यते वेति प्रश्नः । एवं च 'किं सूत्रकारेणैव विवृतोपदेशः कृतः' इति वदता 'येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् । कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।' इति पाणिनीयशिक्षादौ पाणिनीयसूत्रपाठादौ च सर्वैः शिष्टैः पठ्यमानत्वेन पुराणप्रसिद्धत्वेन च तदुपेक्षाऽनौचित्यात् । अष्टाध्याय्यादौ कैश्चित् पठ्यमानत्वमात्रेणाक्षरसमाम्नायस्य पाणिनिकृतत्वायोगात् । वृद्धिशब्दः शास्त्रादौ मङ्गलार्थः प्रयुक्त इति भाष्यविरोधात् । महादेवस्य सूत्रकारत्वेन वैयाकरणैरव्यवह्रियमाणत्वाच्च । (महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि, प्रथमभाग, पृष्ठ १२०)

इस से स्पष्टतर हो जाता है कि कैयट का जो आशय हम ने ऊपर उद्भावित किया है वही रत्नप्रकाशकार शिवरामेन्द्रसरस्वती ने भी बोधित किया है तभी तो वे कैयट के मत की आलोचना कर रहे हैं । यहां यह ध्यातव्य है कि रत्नप्रकाशकार के प्रदीप पर किये गये ये आक्षेप अतीव तुच्छ वा हेय हैं । इन सब का उत्तर आगे इसी ग्रन्थ में यथास्थान दिया जायेगा[1] ।

[९] **ऋलृक्** सूत्रस्थ भाष्य की व्याख्या के प्रसङ्ग में कैयटोपाध्याय प्रदीप में लिखते हैं—

ऋकारलृकारयोः सवर्णविधिरित्यस्य वार्त्तिककारवाक्यत्वात् सूत्रकारेण अनाश्रितत्वादत्र लृकारोपदेशः कृतः ।

अर्थात् **ऋकारलृकारयोः सवर्णविधिः** यह वार्त्तिककार का वचन है अतः सूत्रकार ने इस का आश्रय न लेकर **ऋलृक्** सूत्र में 'लृ' का उपदेश कर दिया है अन्यथा सावर्ण्य के कारण अकेले 'ऋ' से ही दोनों का ग्रहण हो सकता था ।

यहां वार्त्तिककार का वचन होने से सूत्रकार ने इस का आश्रय नहीं लिया—

---

१. रत्नप्रकाशकारोक्त भावना से भावित रहने के कारण नागेशभट्ट ने प्रदीपोद्द्योत में कैयट के 'सूत्रकारः' पद का अर्थ **सूत्रकारो महेश्वरो वेदपुरुषो वा** किया है जो किसी भी प्रकार सामञ्जस्य नहीं रखता । वार्त्तिककार की प्रतिद्वन्द्विता में सूत्रकार सदा पाणिनि ही समझना चाहिये ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस कथन से स्पष्ट लक्षित हो रहा है कि कैयट सूत्रकार पाणिनि की ओर ही संकेत कर रहे हैं। क्योंकि वार्त्तिकों का निर्माण सूत्रकार पाणिनि से बहुत काल बाद में हुआ अतः पूर्वभावी होने से उन्होंने उत्तरकालीन वार्त्तिकों का आश्रय नहीं लिया।

इस से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि कैयट के मत में सूत्रकार पाणिनि ही **ऋलृक्** सूत्र के निर्माता वा उपदेष्टा हैं[1]।

[१०] भाष्य में **ऐऔच्** सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में पठित—**एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत् तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽक्षु हलो हल्षु**—इस स्थल की व्याख्या करते हुए कैयट उपाध्याय प्रदीप में लिखते हैं—

शैलीति। शीले भवा शैली, समवधानपूर्विका प्रवृत्तिः। यथा लोके ब्राह्मणैः सह ब्राह्मणा भोज्यन्ते क्षत्त्रियैः सह क्षत्त्रिया इति, एवमिहापि आचार्येण वर्णा निर्दिष्टा इत्यर्थः। (महाभाष्यप्रदीप, निर्णयसागर सं०, प्रथम भाग, पृष्ठ १२२)

यहां भी कैयट ने स्पष्टतः **आचार्येण वर्णा निर्दिष्टाः** कहा है। 'आचार्य' से यहां आचार्य पाणिनि ही कैयट को अभिप्रेत है। उस ने शिव के अर्थ में 'आचार्य' पद का कहीं पर भी प्रयोग नहीं किया[2]। किञ्च शैली शब्द के **समवधानपूर्विका प्रवृत्तिः** अर्थ से भी यही ध्वनित होता है कि वे आचार्यपद से पाणिनि का ग्रहण चाहते हैं क्योंकि ईश्वरों की शैली नहीं हुआ करती वह तो प्रायः मनुष्यों में ही सम्भव है[3]।

---

१. अपने ही रंग में रंगे रहने के कारण शिवरामेन्द्रसरस्वती यहां पर भी कैयट के मन्तव्य की आलोचना करते हुए लिखते हैं—

एतेन 'ऋकारलृकारयोः सवर्णविधिरित्यस्य वार्त्तिकत्वात् सूत्रकारेणाऽनाश्रितत्वादत्र लृकारोपदेशः कृतः' इति निरस्तम्। अक्षरसमाम्नायस्य त्रिकालज्ञमहादेवप्रणीतत्वेन सूत्रकारेणानाश्रितत्वादिति हेतोरकिञ्चित्करत्वात्।

(महाभाष्यप्रदीपव्याख्यानानि, प्रथम भाग, पृष्ठ १३९)

इसी प्रवाह में बहते हुए नागेशभट्ट को कैयट की रक्षा का जब कोई उपाय नहीं सूझा तो वे कैयट की व्याख्या में अध्याहार का आश्रय करते हुए लिखते हैं—

ननु ऋकारस्याच्त्वे ऋलृवर्णयोः सावर्ण्याद् ऋकारेण लृकारस्यापि ग्रहणाद् अच्कार्यसिद्धौ किम् लृकारोपदेशेनेत्यत आह—ऋकारेति। उपदेशः कृत इति। पाणिनये शिवेनेति शेषः।

(महाभाष्यप्रदीपोद्द्योत निर्णयसागर सं० प्रथम भाग, पृष्ठ ९०)

२. रत्नप्रकाशकार की आलोचना से सन्तुलन खो चुके नागेशभट्ट ने प्रदीपोद्द्योत में यहां पर भी **आचार्यशब्देन अनादिः शब्दपुरुषः** इस प्रकार का अनर्गल व्याख्यान किया है।

३. तुलना करें—

एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते येनैवावयवकार्यं भवति तेनैव समुदायकार्यमपि भवति। (महाभाष्य २.१.३)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस के अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि पतञ्जलि के महाभाष्य अथवा कैयट के प्रदीप में कहीं पर भी ढक्का या ढक्कानिनाद शब्दों का नाम तक नहीं पाया जाता। इन चौदह सूत्रों को शिवसूत्र या माहेश्वरसूत्र भी इन में कहीं नहीं कहा गया है। इन का नाम सर्वत्र प्रत्याहारसूत्र, अक्षरसमाम्नाय या वर्णसमाम्नाय ही निर्दिष्ट किया गया है। अक्षरसमाम्नाय का अर्थ है—वर्णों का न बदला जा सकने वाला क्रमविशेष (वर्णानामानुपूर्व्येण सन्निवेशः)। **अइउण्** को इअउण् या उअइण् आदि नहीं किया जा सकता। अतः इन को अक्षरसमाम्नाय या वर्णसमाम्नाय कहा जाता है। अक्षरसमाम्नाय भिन्न भिन्न तन्त्रों में भिन्न भिन्न प्रकार का तो हो सकता है पर किसी एक तन्त्र में वह निश्चित क्रम से ही अवस्थित होता है। अक्षरसमाम्नाय में आम्नाय शब्द को देख कर या निश्चित वर्णानुपूर्वी के कारण इन को वेदवत् समझते हुए नागेशभट्ट ने इन्हें वैदिकमन्त्रों की तरह अपौरुषेय या नित्य कहना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने प्रदीपोद्द्योत में भर्तृहरि की महाभाष्यदीपिका का भी एक प्रमाण दिया है जो दीपिका में अन्यथापठित है[1]। महाभाष्य के द्वितीयाह्निक के अन्त में—

सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः। पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः। सर्ववेदपुण्यफलावाप्तिश्चास्य ज्ञाने भवति। मातापितरौ चास्य स्वर्गे लोके महीयेते। (महाभाष्य कील्हार्न सं० प्रथमभाग, पृष्ठ २६)

इस प्रकार लोगों को व्याकरण के प्रति उत्साहित करने के लिए अर्थवाद या माहात्म्य का आश्रय लिया गया है। अर्थवादों का स्वार्थ में प्रामाण्य नहीं हुआ करता, वे तो विधिवाक्यों के ही स्तावक हुआ करते हैं। जैसा कि दीपिका में भर्तृहरि कहते हैं—

मातपितरौ चास्येति। मृतयोरपि अध्ययनं न त्यक्तव्यम्। तयोरिष्टफलावाप्त्यर्थम्। जीवतोरपि वा। यदा मरिष्यतस्तदा स्वर्गं गमिष्यत इति अध्ययनम्प्रति अपरः प्रोत्साह्यते। (महाभाष्यदीपिका, पूना सं० पृष्ठ ९२)

[११] जहां तक काशिका का सम्बन्ध है उस का आरम्भ ही **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र की व्याख्या से होता है[2]। यह सूत्र काशिकाकार की दृष्टि में पाणिनि-

---

१. **"अत एव एतत्प्रतीकमुपादाय हरिणा 'अस्याक्षरसमाम्नायस्य वाग्व्यवहारजनकस्य न कश्चित् कर्त्तास्त्येवमेव वेदे पारम्पर्येण स्मर्यमाणम्' इति व्याख्यातम्।"** (प्रदीपोद्द्योत निर्णयसागर सं० प्रथम भाग पृष्ठ १३२)

भर्तृहरि की महाभाष्यदीपिका में पाठ इस प्रकार उपलब्ध होता है—**एवमस्य वाग्व्यवहारस्य न कश्चित् कर्त्तास्ति। एवमेवेदं पारंपर्येण स्मर्यमाणम्।** यहां पर भर्तृहरि ने स्पष्टतः वाग्व्यवहार का कोई कर्त्ता नहीं माना नकि अक्षरसमाम्नाय का। आज भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में मनुष्यों में वाग्व्यवहार की प्रसृति का कोई ठोस कारण नहीं बतलाया जा सका है।

२. **"अथ शब्दानुशासनम्। केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च। कथमनुशासनम्? प्रकृत्यादिविभागकल्पनया सामान्यविशेषवता लक्षणेन।"** (काशिकारम्भे)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रणीत ही है, क्योंकि वृत्तिकार सदा मूल में पाणिनीयसूत्र रख कर ही उस की व्याख्या किया करते हैं भाष्यादि के वचन रख कर नहीं। कैयट आदि उत्तरवर्त्ती विद्वानों ने इसे भाष्य का वचन माना है[1] पर वह चिन्त्य है। इस को पाणिनीयवचन मानने में निम्नस्थ नौ प्रबल प्रमाण हैं। तद्यथा—

(१) भाष्यकार **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र की जिस प्रकार से व्याख्या करते हैं उस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूत्र उन की रचना नहीं अपितु किसी अन्य की रचना है। तथाहि—

अथ शब्दानुशासनम्। अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। (महाभाष्यारम्भे)

यहां 'प्रयुज्यते' क्रिया का कर्त्ता यदि 'पतञ्जलि' और 'अधिकृतम्' का कर्त्ता 'पाणिनि माना जाये तो भाष्यकार का आशय इस प्रकार से होगा—

अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः (मया पतञ्जलिना) प्रयुज्यते। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रम् (पाणिनिना) अधिकृतं वेदितव्यम्।

इस तरह यह कथन अटपटा तथा अनन्वित सा हो जायेगा और इस की एक-कर्तृकता भी नहीं रहेगी। परन्तु दोनों स्थानों पर 'पाणिनिना' कर्त्ता रखने से यह दोष उत्पन्न नहीं होता—अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः (पाणिनिना) प्रयुज्यते। (अतः) शब्दानुशासनं नाम शास्त्रम् (पाणिनिना) अधिकृतं वेदितव्यम्। अब यह कथन सुसङ्गत तथा सुसमन्वित हो जाता है और ठीक भी जचता है। इसके अतिरिक्त **शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्** (शब्दानुशासन नामक शास्त्र प्रारम्भ हुआ समझना चाहिये) पतञ्जलि के इन शब्दों से तो स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि वे पाणिनिकृत इस ग्रन्थ के नाम की व्याख्या कर रहे हैं न कि पहले से वर्त्तमान इस ग्रन्थ का स्वयं 'शब्दानुशासन' नाम रखने चले हैं।

(२) **स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा** (१.१.६८) इस पाणिनीयसूत्र की व्याख्या करते हुए न्यासकार लिखते हैं—

शब्दानुशासनप्रस्तावादेव च शब्दस्येति सिद्धे शब्दग्रहणं यत्र शब्दपरो निर्देशस्तत्र स्वं रूपं गृह्यते नार्थपरे निर्देश इति।

अर्थात् शब्दानुशासन के अधिकार के कारण ही 'शब्दस्य' उपलब्ध हो सकता

---

१. **"भाष्यकारो विवरणकारत्वाद् व्याकरणस्य साक्षात् प्रयोजनमाह—अथ शब्दानुशासनमिति। —स्ववाक्यं व्याख्यातुं तदवयवमथशब्दं तावद् व्याचष्टे—अथेत्ययमिति।"** (महाभाष्यप्रदीपारम्भे)

"भाष्यकारेण पठितं साक्षात्प्रयोजनाह—अथ शब्दानुशासनमिति।" (पदमञ्जरी पृष्ठ ७)

"प्रेक्षावत्प्रवृत्तये व्याकरणस्य विषयं भगवान् भाष्यकारः प्रादर्शयद्—अथ शब्दानुशासनमिति।" (शब्दकौस्तुभ, पृष्ठ १)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

था पुनः सूत्र में शब्दग्रहण से यह ज्ञापित होता है कि जहां शब्दपरक निर्देश हो वहीं पर ही शब्द के रूप का ग्रहण करना चाहिये अर्थप्रधान स्थल पर नहीं।

शब्दानुशासन के अधिकार के कारण सूत्रार्थों को प्रभावित मानने वाला न्यासकार निश्चय ही दोनों को एककर्तृक मानता है यह सुतरां सिद्ध हो जाता है। **स्वं रूपं शब्दस्याऽशब्दसंज्ञा** (१.१.६८) सूत्र पाणिनि की रचना है तो **अथ शब्दानुशासनम्** भी उसी के द्वारा अधिकृत है यह स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है।

न्यासकार ने इसी प्रकार अन्यत्र भी कहा है—

सर्वस्येति शब्दानुशासनप्रस्तावात् सर्वस्य शब्दस्येति गम्यते। (न्यास ८.१.१)

शब्दानुशासनप्रस्तावादेव हि शब्दस्येति सिद्धे शब्दग्रहणं यत्र शब्दपरो निर्देशस्तत्र स्वं रूपं गृह्यते नार्थपरनिर्देश इति ज्ञापनार्थं कृतम्। इह चार्थपरो निर्देशः। तस्मादर्थग्रहणमेव युक्तम्। अर्थपरत्वं तु निर्देशस्याविच्छिन्नाचार्यपारम्पर्योपदेशाद् विज्ञायते। (न्यास ३.४.२६)

(३) मनुस्मृति के प्राचीन व्याख्याता मेधातिथि (ई० नवमशताब्दी) ने अपनी व्याख्या में **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र को पाणिनिरचित माना है—

पौरुषेयेष्वपि ग्रन्थेषु नैव सर्वेषु प्रयोजनाभिधानमाद्रियते। तथा हि भगवान् पाणिनिरनुक्त्वैव अथ शब्दानुशासनम् इति सूत्रसन्दर्भमारभते।

(मनुस्मृतिमेधातिथिभाष्य १.१)

(४) पुरुषोत्तमदेव (ई० द्वादश शताब्दी) भी पाणिनीयसूत्रों की व्याख्या करते हुए अपने सुप्रसिद्ध 'भाषावृत्ति' नामक ग्रन्थ में **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र को सब से आदि में रख कर इस की व्याख्या करते हैं। इस से भी इस के पाणिनीय होने की पुष्टि होती है।

(५) पुरुषोत्तमदेवकृत 'भाषावृत्ति' के व्याख्याता आचार्य सृष्टिधर अपनी व्याख्या के आरम्भ में यही लिखते हैं—

व्याकरणशास्त्रमारभमाणो भगवान् पाणिनिर्मुनिः प्रयोजननामनी व्याचिख्यासुः प्रतिजानीते—अथ शब्दानुशासनमिति।

(श्रीशचन्द्रचक्रवर्त्तिसम्पादित 'भाषावृत्ति' का Introduction पृष्ठ १२)

(६) आर्षग्रन्थों में शास्त्रारम्भ करने से पूर्व प्रायः इस प्रकार के वचन देखे भी जाते हैं। यथा—

मीमांसादर्शन में — **अथाऽतो धर्मजिज्ञासा।**
वेदान्तदर्शन में — **अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा।**
वैशेषिकदर्शन में — **अथाऽतो धर्मं व्याख्यास्यामः।**
योगदर्शन में — **अथ योगानुशासनम्।**
निदानसूत्र में — **अथातश्छन्दसां निचयं व्याख्यास्यामः।**

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चरक में — **अथातो दीर्घञ्जीवितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।**
सुश्रुत में — **अथातो वेदोत्पत्तिनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।**
पारस्करगृह्यसूत्र में— **अथातो गृहस्थालीपाकानां कर्म ।**
खदिरगृह्यसूत्र में — **अथातो गृह्यकर्माणि ।**
गोभिलीयगृह्य० में— **अथातो गृह्यकर्माण्युपदेक्ष्यामः ।**

(७) अष्टाध्यायी के कई प्राचीन हस्तलेखों में यह सूत्र अष्टाध्यायी के आदि में लिखा मिलता है। प्रो० बोथलिङ्कद्वारा संपादित तथा सन् १८८७ में मुद्रित अष्टाध्यायी के प्रारम्भ में भी यह सूत्र मुद्रित है।

(८) स्वामिदयानन्दसरस्वती अपने अष्टाध्यायीभाष्य के प्रारम्भ में **अथ शब्दानुशासनम्** को पाणिनीयसूत्र ही स्वीकार करते हैं—

इदं सूत्रं पाणिनीयमेव । प्राचीनलिखितपुस्तकेषु आदाविदमेवास्ति । दृश्यन्ते च सर्वेष्वार्षेषु ग्रन्थेषु आदौ प्रतिज्ञासूत्राणीदृशानि ।

(९) श्रीयुधिष्ठिरमीमांसकजी भी अपने संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास नामक ग्रन्थ के प्रथम भाग में पृष्ठ (२०९) पर इसे पाणिनीय ही मानते हैं—

"कैयट आदि वैयाकरणों का कथन है कि **अथ शब्दानुशासनम्** वचन भाष्यकार का है, पाणिनीयतन्त्र का आरम्भ **वृद्धिरादैच्** (१.१.१) सूत्र से होता है—यह कथन सर्वथा अयुक्त है। प्राचीन ग्रन्थों की रचनाशैली के अनुसार यह वचन पाणिनीय ही प्रतीत होता है।"

यहां पर यह विशेष ध्यातव्य है कि पाणिनीयव्याकरण यद्यपि **अथ शब्दानुशासनम्** से प्रारम्भ होता है तथापि उस का मुख्य प्रतिपाद्य विषय **वृद्धिरादैच्** (१.१.१) से ही प्रारम्भ होता है। अत एव अध्याय-पाद-सूत्रों की गणना भी इसी सूत्र से स्वीकार की जाती है। प्रतीत होता है कि भारतीय वैयाकरणों की यह पुरातन शैली रही है कि वे अपने व्याकरण को प्रारम्भ करने से पूर्व पूर्वपीठिकारूप निजतन्त्रोपयोगी वर्णसमुदाय या अक्षरसमाम्नाय लिख कर बाद में अपने व्याकरण का प्रतिपाद्य विषय शुरू किया करते थे। ऐसे प्रमाण मिले हैं कि पाणिनि से बहुत पूर्व ऐन्द्रव्याकरण में **अथ वर्णसमूहः** इस प्रकार आरम्भ में कह कर वर्णसमूह का निर्देश करने के बाद व्याकरण प्रारम्भ किया गया था। पाणिनि के उपजीव्य आपिशलिव्याकरण में भी प्रत्याहारों के प्रयोग पाये जाने के निश्चित प्रमाण मिले हैं अतः उस तन्त्र में भी आरम्भ में प्रत्याहारसूत्र अवश्य रहे होंगे। इस के अनन्तर ही मुख्य प्रतिपाद्य का प्रतिपादन किया गया होगा। इस शैली या परम्परा को पाणिनि के उत्तरवर्त्ती अनेक वैयाकरणों ने भी जारी रखा है। यथा—चान्द्रव्याकरण, जैनेन्द्रव्याकरण, जैन शाकटायनव्याकरण, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि में अक्षरसमाम्नाय का निर्देश कर बाद में मुख्य तन्त्र का आरम्भ किया गया है और अध्यायपादादि की गणना भी वर्णोपदेश को छोड़ कर आगे से ही की गई है। अत एव भाष्यकार के **माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं वृद्धि-**

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शब्दमादितः प्रयुङ्क्ते इस वचन से वृद्धिशब्द को शास्त्रारम्भ में प्रयुक्त जान कर इस से पूर्व के **अइउण्** आदि प्रत्याहारसूत्रों को या **अथ शब्दानुशासनम्** इस अधिकारसूत्र को अपाणिनीय मानना युक्त नहीं है। भाष्यकार ने मुख्य तन्त्र के आरम्भ को लक्ष्य में रख कर ही वृद्धिशब्द को आदिमङ्गलार्थ माना है। यदि उन की दृष्टि में **अइउण्** आदि अपाणिनीय होते तो वे— **एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत्तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति अचोऽक्षु हलो हल्षु इति** इस प्रकार न लिखते।

डा० देवस्वरूप मिश्र ने **महाभाष्यनिगूढाकूतयः** नामक अपने शोधग्रन्थ में **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र को पाणिनिसूत्र न मान कर उसे भाष्यकार का वचन सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है। उन की पुनः पुनः दुहराई गई दस पृष्ठात्मक लम्बी चौड़ी चर्चा के सार निम्नस्थ दो तर्क ही हैं—

(क) यदि **अथ शब्दानुशासनम्** यह सूत्र पाणिनीय होता तो भाष्यकार इस की पाणिनीयसूत्रों में ही व्याख्या करते। परन्तु उन्होंने प्रथम आह्निक में इस सूत्र की तथा दूसरे आह्निक में माहेश्वरसूत्रों की व्याख्या करने के अनन्तर तृतीय आह्निक से ही **वृद्धिरादैच्** (१.१.१) आदि पाणिनीयसूत्रों की व्याख्या प्रारम्भ की है। इस से सिद्ध होता है कि यह सूत्र पाणिनीय नहीं अपितु भाष्यकार का अपना ही वचन है[1]।

(ख) ऋषियों की शैली है कि वे ग्रन्थारम्भ में प्रतिज्ञासूत्र के फौरन बाद प्रतिज्ञात वस्तु का लक्षण किया करते हैं। यथा—योगदर्शन में **अथ योगानुशासनम्** इस प्रतिज्ञासूत्र के फौरन बाद **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः** इस प्रकार से योग का लक्षण किया गया है। इसी तरह वेदान्तदर्शन तथा मीमांसादर्शन में भी किया गया है। परन्तु यदि **अथ शब्दानुशासनम्** को पाणिनिवचन मानते हैं तो पाणिनीय अष्टाध्यायी में इस सूत्र के बाद प्रतिज्ञात 'शब्द' का लक्षण होना चाहिये था जो प्राप्त नहीं होता। इस से सिद्ध होता है कि यह पाणिनि का वचन नहीं अपितु भाष्यकार का ही वचन है। भाष्य में इस सूत्र के बाद—**येनोच्चरितेन सास्ना-लाङ्गूल-ककुद-खुर-विषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः। अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते**—इस प्रकार शब्द का लक्षण यथावत् प्राप्त होता है। भाष्यकार ने **अथ शब्दानुशासनम्** की जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह उन की अपने सूत्र की ही व्याख्या है। भाष्यकार अपने वचनों की भी कई बार व्याख्या किया करते हैं। जैसाकि कहा है— **स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः**।[2]

---

१. "यदि च **अथ शब्दानुशासनम्** इति वाक्यं पाणिनिसूत्रं स्यात् तर्हि महाभाष्यकारस्तत्सूत्रव्याख्यानं पाणिनिसूत्रव्याख्यासन्दर्भे कुर्यात्, किन्तु तथा न कृतम्। यतो हि पाणिनिसूत्रव्याख्यानं तृतीयाह्निकतः प्रारब्धम्। द्वितीयाह्निके माहेश्वरसूत्राणां व्याख्या कृता। अतोऽत्राकामेनापि इदमेव वक्तव्यम्भवेद् यदिदं वचनं भाष्यकारस्यैव न तु सूत्रकारस्य।" (महाभाष्यनिगूढाकूतयः, सं० विश्वविद्यालयप्रकाशन पृष्ठ ७)

२. "यदि **अथ शब्दानुशासनम्** इति वचनं भगवतः पाणिनेः स्यात् तदावश्यं भगवता तदनन्तरसूत्रेण अनुशासनकर्मत्वेन प्रतिज्ञातस्य शब्दस्य लक्षणं लक्षितं स्यात्। किन्तु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परन्तु ज़रा ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी के उपर्युक्त दोनों तर्क पूर्वोक्त प्रमाणपुञ्ज के आलोक में कुछ भी महत्त्व नहीं रखते। मिश्रजी अपने प्रथम तर्क के विषय में नितान्त भ्रान्त हैं। उन्हों ने स्वामिदयानन्दसरस्वती आदि प्रतिपक्षियों का मन्तव्य भी ठीक तरह से नहीं समझा। प्रतिपक्षी जहां **अथ शब्दानुशासनम्** को पाणिनिसूत्र मानते हैं वहां प्रत्याहारसूत्रों को भी पाणिनि की ही कृति स्वीकार करते हैं। अतः मिश्रजी का यह कहना कि यदि **अथ शब्दानुशासनम्** यह पाणिनीयसूत्र होता तो पतञ्जलि इस की माहेश्वरसूत्रों के बाद ही व्याख्या करते—अपने आप ही खण्डित हो जाता है। ये सब पाणिनि के सूत्र हैं और भाष्यकार पतञ्जलि इन की क्रमशः व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं अतः इस सूत्र को पाणिनीय मानने में कोई भी बाधा उपस्थित नहीं होती।

मिश्रजी का द्वितीय तर्क कि यदि **अथ शब्दानुशासनम्** सूत्र पाणिनीय होता तो पाणिनि को इस सूत्र के फौरन बाद शब्द का लक्षण या शब्दविषयक व्याख्यान करना चाहिये था जैसाकि योगदर्शन आदि ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में किया गया है—सारहीन तथा चिन्त्य है। क्योंकि दर्शनों ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में इस से विपरीत भी पाया जाता है। यथा पतञ्जलि के छन्दोग्रन्थ निदानसूत्रम् में **अथातश्छन्दसां निचयं व्याख्यास्यामः** इस प्रकार प्रतिज्ञा आरम्भ कर के भी 'छन्दस्' का कोई लक्षण नहीं किया गया। साङ्ख्य के सुप्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ तत्त्वसमास में **अथातस्तत्त्वसमासः** कह कर भी तत्त्व का कोई लक्षण न कर के **अष्टौ प्रकृतयः, षोडश विकाराः** इस प्रकार सीधे तत्त्वों की गणना प्रारम्भ कर दी गई है। साङ्ख्यदर्शन में **अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः** कह कर भी त्रिविध दुःख का कोई लक्षण या विवेचन नहीं किया गया। सुश्रुत में **अथ वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः** यह प्रतिज्ञा कर के भी वेद का लक्षण नहीं किया गया। अतः ऐसी कोई व्याप्ति नहीं है कि आचार्य जिस का अधिकार चलाएं उस का लक्षण भी उस से आगे कहें। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में बीसियों अधिकार चलाए हैं परन्तु लक्षण नहीं किये। **प्रत्ययः** (३.१.१), **कृदतिङ्** (३.१.९३), **कृत्याः** (३.१.९५), **प्राक्कडारात् समासः** (२.१.३), **कारके** (१.४.२३), आदि अधिकारों के बाद उन का कोई लक्षण नहीं किया गया। अधिकृत का लक्षण करना वस्तुतः उन के शील में ही नहीं है। यदि वे ऐसा करने लगते तो उन का सूत्रपाठ ही महा-

---

नात्र भगवान् पाणिनिः प्रतिज्ञातस्य शब्दस्य लक्षणं कृतवान् इति सूत्रकारीयपद्धतिहानप्रसङ्गः। सूत्रकाराणां तु शैली विद्यते यत्ते प्रतिज्ञातवस्तुनो लक्षणं प्रतिज्ञासूत्रानन्तरमेव चक्रुः। यथा **अथ योगानुशासनम्** इति सूत्रेण योगं प्रतिज्ञाय भगवान् पतञ्जलिस्तदनन्तरसूत्रेणैव योगस्य लक्षणं कृतवान् **योगश्चित्तवृत्तिनिरोध** इति। एवमेव पूर्वमीमांसायां वेदान्तसूत्रे चापि बोध्यम्। यदा च वचनमिदं भाष्यकारस्येति पक्षः समाश्रियते तदा न कापि क्षतिः। यतस्तेन प्रतिज्ञातस्य शब्दस्य स्वरूपं प्रोक्तमेव **येनोच्चरितेनेत्यादि**।"

(पूर्वोक्त, पृष्ठ १२)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भाष्य बन जाता। व्याकरण को संक्षिप्ततरीत्या प्रस्तुत करना यह उन का ध्येय ही लुप्त हो जाता। लक्षण करना भाष्यकारों या विवरणकारों का ही कार्य होता है न कि सूत्रकारों का। सूत्रग्रन्थों में लक्षण प्राय: दर्शनग्रन्थों में ही मिलते हैं सर्वत्र नहीं। अत: इस सूत्र को पाणिनीय मानने में कोई भी बाधा नहीं है।

अब जब कि **अथ शब्दानुशासनम्** यह पाणिनिप्रोक्त सूत्र काशिका के आदि में व्याख्यात है तो उस से अगले प्रत्याहारसूत्रों के पाणिनीय होने में तो कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। इस बात को हम काशिका के अन्य वचनों से भी सिद्ध कर सकते हैं। **निदर्शनार्थ** यथा—

[१२] प्रत्याहारसूत्रों की काशिकास्थ व्याख्या से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि काशिकाकार इन सूत्रों को पाणिनि की ही कृति मानते हैं।

उदाहरणार्थ **अइउण्** सूत्र पर काशिकास्थ व्याख्या देखें —

अइउ इत्यनेन क्रमेण वर्णानुपदिश्यान्ते णकारमितं करोति प्रत्याहारार्थम्।

(काशिका **अइउण्** पर)

यहां पर 'उपदिश्य' और 'करोति' दो क्रियाएं हैं। 'उपदिश्य' में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् आदेश हुआ है। क्त्वाप्रत्यय तभी हुआ करता है जब दो समानकर्तृक धातुओं का प्रयोग हो और उन में से एक धातु पूर्वकालिक हो। यथा—देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति। यहां भुज् और व्रज् दोनों धातुओं का एक ही कर्त्ता 'देवदत्त:' है। इन दो क्रियाओं में कर्त्ता पहले भुजिक्रिया को करता है और बाद में व्रजिक्रिया को। तो **समानकर्तृकयो: पूर्वकाले** (३.४.२१) इस नियमानुसार पूर्वकालिक क्रिया भुज् से क्त्वा प्रत्यय किया जाता है। इस तरह काशिका के उपर्युक्त पाठ में भी यही समझा जायेगा। 'उपदिश्य' और 'करोति' दोनों समानकर्तृक क्रियाएं हैं अर्थात् इन दोनों का कर्त्ता एक ही व्यक्ति है। कर्त्ता ने पहले उपदेश किया और बाद में णकार को इत् किया। णकार को **हलन्त्यम्** (१.३.३) सूत्र द्वारा इत् करने वाला आचार्य पाणिनि ही है अत: **अइउण्** में अ इ उ वर्णों का उपदेश करने वाला भी पाणिनि ही सिद्ध होता है। इस प्रकार ये सब सूत्र काशिकाकार के मतानुसार पाणिनि की ही कृति प्रमाणित होते हैं।

[१३] ईश्वीय सप्तमशताब्दी के वैदिकविद्वान् स्कन्दस्वामी ने अपनी निरुक्त-व्याख्या में इन सूत्रों को स्पष्ट: पाणिनीय स्वीकार किया है—

नापि अइउण् इति पाणिनीयप्रत्याहारसमाम्नायवद् मातृकावर्णसमाम्नायवच्च—। (निरुक्तस्कन्दस्वामिव्याख्या, प्रथम भाग, पृष्ठ ८)

[१४] ईश्वीय अष्टमशताब्दी के आसपास रचे गये अग्निपुराण[1] में इन सूत्रों

---

१. देखें—जर्नल आफ् दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी VI, 483. (सिद्धेश्वरवर्मविरचित 'प्राचीन भारतीय वैयाकरणों के ध्वन्यात्मक विचारों का विवेचनात्मक अध्ययन' से उद्धृत, पृष्ठ ११)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को माहेश्वर आदि कुछ नहीं कहा गया केवल प्रत्याहारसूत्रों से ही निर्दिष्ट किया गया है। (देखें अग्निपुराण, आनन्दाश्रम सं० पृष्ठ ४३६-४३७)

[१५] ईश्वीय एकादशशताब्दी के कुलशेखरवर्मा आश्चर्यमञ्जरी ग्रन्थ में प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनिविरचित मानता है—

पाणिनिप्रत्याहार इव महाप्राणझषाश्लिष्टो झषालङ्कृतश्च (समुद्रः)।

(अमरकोष, अमरटीकासर्वस्व भाग १, पृष्ठ १८६ पर उद्धृत)

[१६] ईश्वीय एकादशशताब्दी के धारेश्वर महाराज भोज परम आस्तिक थे। स्वनिर्मितव्याकरण सरस्वतीकण्ठाभरण के आदि में इन्होंने शिव और पार्वती को नमस्कार भी किया है[1]। इन के व्याकरण में मङ्गलाचरण के बाद यही पाणिनीय प्रत्याहारसूत्र निर्दिष्ट हैं। परन्तु **हयवरट्, लण्** इन दो सूत्रों के स्थान पर इन्होंने **हयवरलण्** इस प्रकार का एक ही सूत्र बनाया है। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे इन सूत्रों का माहेश्वरत्व नहीं मानते थे; अन्यथा वे इन सूत्रों का बीच में अन्यथाकरण न करते क्योंकि कोई भी शिवभक्त इन में संशोधन करने का साहस नहीं कर सकता।

[१७] धर्मकीर्ति (ईश्वीय एकादशशताब्दी) के रूपावतार, पुरुषोत्तमदेव (ईश्वीय द्वादशशताब्दी) की भाषावृत्ति, सायण (ई० त्रयोदशशती) की धातुवृत्ति, विमलसूरि (ई० चतुर्दशशताब्दी) की रूपमाला, रामचन्द्राचार्य (ईश्वीय चतुर्दश शताब्दी) की प्रक्रियाकौमुदी, अन्नम्भट्ट (ईश्वीय षोडशशताब्दी) की मिताक्षरावृत्ति, तथा नारायणभट्ट (ईश्वीय सप्तदशशताब्दी) के प्रक्रियासर्वस्व में सर्वत्र इन सूत्रों को केवल प्रत्याहारसूत्र ही कहा गया है माहेश्वर या शिवसूत्र आदि कहीं नहीं कहा गया। इस से सिद्ध होता है कि वे सब इन सूत्रों को पाणिनि की ही कृति समझते थे।

[१८] सिद्धान्तकौमुदी के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार ज्ञानेन्द्रस्वामी अपनी तत्त्वबोधिनी व्याख्या में इन सूत्रों को कहीं पर भी माहेश्वराणि नहीं कहते—यह हम पहले लिख चुके हैं। **ओर्गुणः** (सि० कौ० ८४६) सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में उन के तत्त्वबोधिनीस्थ ये वचन विशेष ध्यातव्य हैं—

अन्ये तु ऋकारात् पृथग् लृकार उपदेष्टव्य एव, ऋकारोपदेशेन लृकारस्यालाभात्। न च 'ऋकारलृकारयोर्मिथः सावर्ण्यम्' इति वचनात् तल्लाभः शङ्क्यः, वार्त्तिकं दृष्ट्वा सूत्रकृतोऽप्रवृत्तेरित्याहुः।

वार्त्तिक को देखकर सूत्रकार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि वार्त्तिकपाठ उस के बाद की रचना है—ज्ञानेन्द्रस्वामी के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वे **ऋलृक्** सूत्र को पाणिनिनिर्मित ही मान रहे हैं। यदि यह सूत्र शिवनिर्मित या शिवप्रोक्त होता तो शिव के त्रिकालदर्शी होने से यह हेतु उपपन्न ही न हो सकता।[2]

---

१. **"प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्ययाविव।
श्रेयःपदमुमेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे॥"** (सरस्वतीकण्ठाभरणादौ)

२. यहां पर 'अन्ये—आहुः' द्वारा तत्त्वबोधिनीकार—कैयट के प्रदीपस्थ **ऋकारलृकारयोः सवर्णविधिरित्यस्य वार्त्तिककारवाक्यत्वात् सूत्रकारेणानाश्रितत्वादत्र लृका-**

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

[१९] भट्टोजिदीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित बृहच्छब्दरत्न में **वृद्धिरादैच्** (१.१.१) सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में 'केचित्' द्वारा किन्हीं लोगों के मतानुसार प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनिप्रणीत स्वीकार करते हैं। तथाहि –

वर्णसमाम्नायस्तु महेश्वरेण प्रोक्तः। केचित्तु—पाणिनिप्रोक्त एव, उणादिपाठवन्नाष्टाध्याय्यामन्तर्भावः।—अपरे त्वष्टाध्याय्यामेवान्तर्भावः। वृद्धिशब्दस्तु ग्रन्थमध्ये मङ्गलार्थं सूत्रादौ पठित इत्याहुः। (बृहच्छब्दरत्न, पूना सं० पृष्ठ ५७)

इस से स्पष्ट विदित होता है कि हरिदीक्षित या नागेशभट्ट के समय में कई ऐसे विद्वान् थे जो इन सूत्रों को माहेश्वर या शिवोपदिष्ट न मान कर पाणिनिप्रणीत ही स्वीकार करते थे।

[२०] आधुनिक काल में सब से पहले मथुरावासी सुप्रसिद्ध वैयाकरण दण्डिस्वामिविरजानन्द के सुयोग्य शिष्य एवम् आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामिदयानन्दसरस्वती ने ही इन के माहेश्वरत्व का खण्डन करते हुए इन को पाणिनिप्रणीत ही स्वीकार किया है। वे अपने अष्टाध्यायीभाष्य के आरम्भ में इन सूत्रों की व्याख्या के प्रसङ्ग में लिखते हैं—

अत्र प्रत्याहारेषु केचिद् भट्टोजिदीक्षितादयः सम्प्रवदन्ति—इमानि माहेश्वराणि सूत्राणीति। महेश्वरादागतानि प्रोक्तानि वा। तदिदमसत्यम्। कथम्? तत्र प्रमाणाऽभावात्। अत्र तु प्रमाणम्—

भा०—एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते यत्तुल्यजातीयांस्तुल्यजातीयेषूपदिशति। अचोऽक्षु हलो हल्षु।

अत्र 'उपदिशति' इति क्रियायाः कर्त्ता पूर्वस्याः षष्ठ्या विपरिणामाद् आचार्यः पाणिनिरायाति। (अष्टाध्यायीभाष्य, प्रथमभाग पृष्ठ १२)

[२१] वाराणसी के सुप्रसिद्ध विद्वान् सभापतिशर्मोपाध्याय सिद्धान्तकौमुदी की अपनी लक्ष्मीनामक व्याख्या में 'केचित्' के द्वारा इन प्रत्याहारसूत्रों के विषय में अपने आन्तरिक विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

रोपदेशः कृतः इस वचन की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं। कैयट के इस वचन की हम नं० [९] पर व्याख्या कर चुके हैं। यहां एक बात और भी विशेष ध्यातव्य है कि तत्त्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्रस्वामी को दीक्षितजी ने अपनी नवनिर्मित सिद्धान्तकौमुदी पर व्याख्या करने के लिये विवश किया था वरन् अनेक मतभेदों के कारण वे उस पर व्याख्या करना नहीं चाहते थे—यह किंवदन्ती आज भी विद्वत्समाज में बहुत प्रसिद्ध है। सम्भवतः दीक्षित का इन सूत्रों को **माहेश्वराणि** कहना भी स्वामी को पसन्द न था अतः उन्होंने **नहि वृत्तिं व्याख्यातुमुद्यतस्य तद्विरुद्धं व्याख्यानं युज्यते कर्तुम्** न्यासकार की इस उक्ति का अनुसरण करते हुए इस स्थल की व्याख्या ही नहीं की, मौन साधे रहे। अन्यत्र उन्होंने अपने विचार प्रकट कर ही दिये।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

केचित्तु —एतस्याः शिक्षायाः पाणिनिसम्मतत्वे प्रमाणाभावः, इति वर्णसमाम्नायस्यापि कर्त्ता पाणिनिरेव । अस्य महेश्वरकर्तृकत्वं भाष्ये क्वापि नोपन्यस्तम् ।

(सिद्धान्तकौमुदी लक्ष्मीव्याख्या, प्रथम भाग, पृष्ठ ८)

[२२] समग्र महाभाष्य के सम्पादक, काशी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीगुरुप्रसादशास्त्री महाभाष्य की अपनी व्याख्या राजलक्ष्मी में इन सूत्रों का माहेश्वरत्व खण्डन करते हुए स्पष्ट शब्दों में इन्हें पाणिनिकृत स्वीकार करते हैं—

एतेन वर्णोपदेशोऽयं पाणिनिकृत एवेति स्पष्टं लभ्यते । पाणिनये महादेवकृत इति नागेशभट्टोक्तिस्तु स्ववासनयैव न प्रमाणानुगृहीतेति ।

(महाभाष्य गुरुप्रसादशास्त्रिसंस्करण, प्रथमभाग पृष्ठ ७३)

[२३] लघुसिद्धान्तकौमुदी पर सन् १९०५ में मुद्रित रणछोडजीशास्त्रिकृत सारबोधिनी व्याख्या में **इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि** पर निम्नस्थ टिप्पणी की गई है ।

काशिकादिषु बहुषु प्राचीनग्रन्थेषु माहेश्वराणीति नोपलभ्यते ।

अर्थात् काशिका आदि प्राचीन ग्रन्थों में इन सूत्रों को कहीं माहेश्वर नहीं कहा गया ।

[२४] पूना से प्रकाशित महाभाष्य मराठी अनुवाद के सप्तम खण्ड (प्रस्तावना खण्ड) में प्रत्याहारसूत्रों के कर्तृत्व पर अपने विचार व्यक्त करते हुए महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर लिखते हैं—

यावरून हीं सूत्रें पाणिनीनें रचिलीं असें भाष्कारां चे मत असावें । जर ही सूत्रें महेश्वरोपदेश म्हणून सर्वथा प्रमाण असतीं तर महेश्वराच्या शब्दां चे विषयीं ऊहापोह करणें अयुक्त आहे असें त्यांनी स्पष्ट म्हटलें असतें । नन्दिकेश्वराची कारिका ही अर्थवाद स्वरूपाची आहे व 'अइउण्, ॠलृक्' इत्यादि सूत्रांचे महत्त्व दाखविणें हेंच तिचें प्रयोजन आहे । (व्याकरणमहाभाष्यप्रस्तावनाखण्ड, पृष्ठ १५५)

अर्थात् ये समग्र सूत्र पाणिनि की रचना हैं—ऐसा भाष्यकार का आशय प्रतीत होता है । यदि ये सूत्र महेश्वर के उपदेश से पाणिनि को प्राप्त हुए होते तो भाष्यकार का महेश्वर के शब्दों में ऊहापोह करना सर्वथा अयुक्त होता । अतः नन्दिकेश्वर की कारिकाओं को अर्थवाद के रूप में ही ग्रहण करना चाहिये । इन का प्रयोजन **अइउण्, ॠलृक्** आदि सूत्रों का महत्त्व दर्शाना ही है ।

[२५] डा० हर्षनाथमिश्र 'चान्द्रव्याकरणवृत्तेः समालोचनात्मकध्ययनम्' नामक अपने शोधप्रबन्ध में इन प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनिकृत मानते हुए इन का माहेश्वरत्व स्पष्ट शब्दों में खण्डन करते हैं—

अत एषामानुपूर्वी पाणिनिकृता । अनुबन्धा अपि तन्निबद्धा एव । पाणिनिना शिवादिमानि न प्राप्तानि । एषां सूत्राणां शिवसूत्रत्वं महेश्वरसूत्रत्वम् इतीदृशो विचारः नाऽस्तिप्राचीनः । विचारोऽयं न कात्यायनस्य, न वा पतञ्जलेर्न वा भर्तृहरेरवगत इति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रतिभाति । नागेशभट्टेन पतञ्जलेर्भर्तृहरेश्चोद्धरणस्य कष्टकल्पनया निरङ्कुशवाक्याध्याहारैः स्वमतपरकत्वसाधनाय यथाशक्ति प्रयतितम्; परन्तु तथ्यं तु इदमस्ति यत् पतञ्जलेः प्रसादशैल्याम् एतादृशकष्टकल्पनाया अवसर एवादत्तप्रसरोऽस्ति । किञ्च कृतज्ञताज्ञापने पराकाष्ठां गतेन येन पाणिनिना स्वसूत्रेषु पूजार्थपरका विभाषासूचकाश्च दश वैयाकरणा भारद्वाजादयः स्मृतास्तेन किं व्याकरणमूलभूतस्य महेश्वरस्य शिवस्य वा केनापि व्याजेन क्वापि स्मरणं कृत्वा तं प्रति कृतज्ञता न ज्ञाप्येत ? इति महच्चित्रम् । अत एषां सूत्राणां श्रुतित्वसम्पादनप्रयासोऽत्यन्ताऽपरकालिकः । अक्षरसमाम्नायस्य पाणिनिकर्तृत्वे बहूनि बाह्यसाक्ष्याण्युपलभ्यन्ते ।

(चान्द्रवृत्तेः समालोचनात्मकमध्ययनम्, पृष्ठ २३१)

इदं तु निश्चप्रचं यदेषां सूत्राणां महेश्वरसूत्रत्वस्य शिवसूत्रत्वस्य च प्रतिपादनं नाऽतिप्राचीनम् ।

(पूर्वोक्त, पृष्ठ २३३)

अर्थात् इन प्रत्याहारसूत्रों का क्रम पाणिनिद्वारा ही रचा गया है तथा इन के अनुबन्ध भी उसी के द्वारा निबद्ध किये गये हैं। पाणिनि ने इन सूत्रों को शिव से पाया— यह विचार बहुत प्राचीन नहीं है । कात्यायन, पतञ्जलि और भर्तृहरि इस विचार से अवगत प्रतीत नहीं होते। नागेशभट्ट ने भाष्य और भर्तृहरि के उद्धरणों से निरङ्कुश वाक्यों के अध्याहारों के बल पर जो आशय निकाला है वह क्लिष्टकल्पनामात्र है । पतञ्जलि की प्रसादपूर्ण शैली में इस तरह की कल्पना का अवकाश ही नहीं । क्या यह उचित हो सकता है कि जिस पाणिनि ने अपने सूत्रों में कृतज्ञतावश भारद्वाज आदि दस प्राचीन आचार्यों के नामों का उल्लेख किया हो वह शिवजी के प्रति अपनी कृतज्ञता नाममात्र से भी कहीं प्रकट न करे ? इन सूत्रों को वेद मानने का विचार भी अत्यन्त आधुनिक है । इन सूत्रों को पाणिनीय होने में अनेक बाह्य साक्ष्य भी उपलब्ध हैं।

तो इस प्रकार उपर्युक्त पच्चीस प्रमाणों के आलोक में यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि ये सूत्र पाणिनीय ही हैं, शिवजी के डमरूनिनाद वाली कथा मनगढ़न्त है । इस कपोलकल्पना को प्रश्रय देने वाली नन्दिकेश्वरकाशिका भी कोई प्राचीन ग्रन्थ नहीं है । इस ग्रन्थ का किसी प्राचीन लेखक ने उल्लेख तक नहीं किया । सम्भवतः शैवागम के अभिव्याप्तिकाल में इस की रचना की गई । वैयाकरणों में नागेशभट्ट ने ही सर्वप्रथम इसे उद्धृत किया है ।

अब दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या पाणिनि ने इन सूत्रों का निर्माण स्वयं अपनी कल्पना से किया है या अपने से पूर्ववर्त्ती वैयाकरणों से प्रेरित होकर इन की रचना की है ? दूसरे शब्दों में—क्या ये प्रत्याहार पाणिनि की अपनी सूझ हैं या किसी अन्य पूर्ववर्त्ती मनीषी की ? अब यहां इस प्रश्न पर उपलब्ध कुछ प्रमाणों को आधार मान कर विचार किया जाता है ।

पाणिनीयतन्त्र में प्रचलित 'प्रत्याहार' शब्द कुछ इसी प्रकार के अर्थों में ऋक्तन्त्र में प्रयुक्त दृष्टिगोचर होता है—

प्रत्याहारार्थो वर्णोऽनुबन्धो व्यञ्जनं यावतिथस्तावतां तदादीनां ततः पराणाम् ।

(ऋक्तन्त्र, सूर्यकान्त सं० पृष्ठ ३)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऋक्तन्त्र शाकटायन प्रणीत है और पाणिनि से प्राचीन है—ऐसा अनेक मनीषियों का विचार है। शायद यही कारण है कि पूर्वप्रसिद्ध होने के कारण **आदिरन्त्येन सहेता** (१.१.७०) सूत्र में प्रत्याहारसंज्ञा का पाणिनिद्वारा निर्देश न करने पर भी व्याख्याकारों ने उक्तसूत्रद्वारा की जाने वाली अण् अक् आदि संज्ञाओं को प्रत्याहारशब्द से ही व्यवहृत किया है।

परन्तु न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि इस विषय पर एक महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—

पाणिनेर्यश्चकारेण प्रत्याहारः सोऽन्येषामाचार्याणां मतेन षकारेण।

(न्यास ४.१.३७)

अर्थात् पाणिनि ने चकार अनुबन्ध लगा कर जो 'अच्' प्रत्याहार बनाया है उसे अन्य आचार्य षकार अनुबन्ध लगा कर अष् प्रत्याहार बनाते थे। इस कथन का स्पष्ट तात्पर्य यह हुआ कि पाणिनि से पूर्व भी इन प्रत्याहारों का प्रयोग होता था। जब प्रत्याहारों का प्रयोग होता था तो प्रत्याहारसूत्र भी किसी न किसी रूप में उन आचार्यों के सामने अवश्य विद्यमान रहे होंगे। अतः न्यासकार के इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि से पूर्व भी प्रत्याहारसूत्रों की सत्ता थी। पाणिनि ने उन में थोड़ा हेरफेर कर अपने व्याकरण के अनुरूप उन को ठीक ठाक बिठाया है। न्यासकार ने यह वचन आचार्यशन्तनुप्रणीत **लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः** (फिट्सूत्र २.१९), **तृणधान्यानां च द्व्यषाम्** (फिट्सूत्र २.४) इत्यादि फिट्सूत्रों में प्रयुक्त 'अष्' प्रत्याहार को लक्ष्य में रखते हुए लिखा है।

न्यासकार का यह वचन ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। पाणिनि से पूर्व भी प्रत्याहारसूत्रों तथा प्रत्याहारशैली का प्रचलन था — यह इस से सुतरां सिद्ध हो जाता है। इस विषय में चान्द्रव्याकरण की स्वोपज्ञवृत्ति से भी इस मन्तव्य की पुष्टि होती है। चन्द्राचार्य (ईस्वीय पञ्चमशताब्दी) अपनी वृत्ति में लिखते हैं—

एष प्रत्याहारः पूर्वव्याकरणेष्वपि स्थित एव। अयं तु विशेषः 'ऐ औष्' यदासीत् तद् 'ऐऔच्' इति कृतम्। तथाहि—लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरुः (फिट्सूत्र २.१९), तृणधान्यानां च द्व्यषाम् (फिट्सूत्र २.४) इति पठ्यते।

(चान्द्रवृत्ति पूना सं० प्रथम भाग पृष्ठ ९-१०)

चन्द्राचार्य के इन वचनों से स्पष्ट है कि पाणिनीय अच् प्रत्याहार के स्थान पर अष्प्रत्याहार का प्रयोग करने वाला फिट्सूत्रप्रवक्ता शन्तनु आचार्य पाणिनि से पूर्ववर्त्ती था।

अष्प्रत्याहार से अतिरिक्त फिट्सूत्रों में इक्, खय् और हय् प्रत्याहारों का भी निर्देश पाया जाता है[1]। **हय् इति हलां सञ्ज्ञा**—ऐसा लघुशब्देन्दुशेखर में नागेशभट्ट ने भी कहा है (देखें फिट्सूत्र ४६ की व्याख्या में लघुशब्देन्दुशेखर)।

---

१. इक्—**इगन्तानां च द्व्यषाम्** (फिट्सूत्र ४९)।
खय्—**खय्युवर्णं कृत्रिमाख्या चेत्** (फिट्सूत्र ३१)।
हय्—**हयादीनामसंयुक्तलान्तानामन्तः** (फिट्सूत्र ४६)।
ईषान्तस्य हयादेरादिर्वा (फिट्सूत्र [illegible])।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इसीप्रकार उणादिसूत्रों को भी वैयाकरणनिकाय में पाणिनि से पूर्ववर्त्ती माना जाता है[1]। कुछ वैयाकरण इन को शाकटायन की कृति तथा अन्य आपिशलि की रचना मानते हैं[2]। शाकटायन और आपिशलि दोनों पाणिनि से पूर्ववर्त्ती आचार्य हैं। पाणिनि ने स्वमुखतः उन का अष्टाध्यायी में निर्देश किया है[3]। इन उणादिसूत्रों में भी **ञमन्ताड्डः** (उणा० १.१११) सूत्र में ञम् प्रत्याहार का उल्लेख पाया जाता है। इस से विदित होता है कि उणादिसूत्रकार के आगे कम से कम **ञमङणनम्** यह प्रत्याहारसूत्र तो विद्यमान था ही। इसी प्रकार उणादियों में **अच इः** (उणा० ४.१३८) सूत्र पर अच्प्रत्याहार का भी उल्लेख पाया जाता है।

उणादिसूत्रों के प्राचीन वृत्तिकार उज्ज्वलदत्त ने **नावञ्चेः** (उणा० १.१८) सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में **आपिशलिस्तु न्यङ्कोर्नैच्भावं शास्ति** ऐसा कहा है। इस से सिद्ध होता है कि पाणिनि से पूर्ववर्त्ती आचार्य आपिशलि ऐच् प्रत्याहार से भी परिचित थे।

डा० रघुवीर ने अडचारपुस्तकालय से आपिशलिशिक्षा का एक हस्तलेख प्राप्त कर उस का सुन्दर सम्पादन कर उसे The Journal of Vedic Studies, May 1934 में छपवाया था। इस में प्रकाशित सूत्ररूपा आपिशलिशिक्षा में जो **ञमङणनाः स्वस्थाननासिकास्थानाः** (१.१९) सूत्र प्रकाशित हुआ है इस से भी यही परिलक्षित होता है कि आपिशलि **ञमङणनम्** इस प्रत्याहारसूत्र के क्रम से भलीभांति परिचित थे। अन्यथा वे अपना शिक्षासूत्र लौकिकक्रम के आश्रय से '**ङञणनमाः स्वस्थाननासिकास्थानाः**' इस प्रकार रचते।

---

१. प्रो० मैक्समूलर ने उणादिसूत्रों को पाणिनि से प्राचीन माना है (देखें—A History of Sanskrit Literature पृष्ठ ७७)।
थ्योडेर आफ्रेक्ट ने उणादिसूत्रों को उज्ज्वलदत्त की वृत्ति के साथ सम्पादित किया है। वे उस की भूमिका में लिखते हैं कि उणादिसूत्र अपने को पाणिनि से पर्याप्त प्राचीन सिद्ध करते हैं।

२. **"येयं शाकटायनादिभिः पञ्चपादी रचिता।"**
(उणा० श्वेतवनवासिवृत्ति, पृष्ठ २)
"एवं च कृवापेत्युणादिसूत्राणि शाकटायनस्येति सूचितम्।"
(महाभाष्यप्रदीपोद्द्योत ३.३.१)
"तानि चेमानि सूत्राणि शाकटायनमुनिप्रणीतानि न तु पाणिनिना प्रणीतानि।"
(सि० कौ० बालमनोरमा उत्तरार्ध, गुरुप्रसाद सं० पृष्ठ ४५७)
श्रीयुधिष्ठिरमीमांसक ने पञ्चपादी उणादिसूत्रों को पाणिनि से पूर्ववर्त्ती आपिशलि की कृति माना है (देखें—संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीयभाग, पृष्ठ २०१)।

३. **लङः शाकटायनस्यैव** (३.४.१११), **वा सुप्यापिशलेः** (६.१.९२)।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भाषावृत्ति के व्याख्याता सृष्टिधर ने अपनी व्याख्या में आपिशलिव्याकरण का एक वचन उद्धृत किया है--

तथा चापिशलिः—"**दन्त्यौष्ठचत्वाद् वकारस्य वह-व्यध-वृधां न भष् इति ।**"

(भाषावृत्तिसृष्टिधरव्याख्या एशियाटिक् सं० पृष्ठ १६)

इस में भष् प्रत्याहार का स्पष्ट उल्लेख है। इस से प्रतीत होता है कि पाणिनि से पूर्व भी प्रत्याहारसूत्र किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान थे जिन का पाणिनि ने अपने तन्त्र के अनुरूप परिष्कार किया।

पौष्करसादि पाणिनि से पूर्ववर्त्ती आचार्य थे। पाणिनि ने अपने गणपाठ के तौल्वल्यादिगण (२.४.६१) में इन का साक्षात् उल्लेख किया है। पौष्करसादि आचार्य का एक मत वार्त्तिककार ने (८.४.४८) सूत्र पर उद्धृत किया है—

चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः । (महाभाष्य ८.४.४८)

अर्थात् पौष्करसादि आचार्य के मत में चय्प्रत्याहारगत वर्णों को वर्गों के द्वितीय वर्ण हो जाते हैं शर् परे हो तो। यथा—अक्षरम्, अख्षरम् आदि। इस वचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पौष्करसादि आचार्य के व्याकरण में कम से कम चय् और शर् दो प्रत्याहारों का उल्लेख तो था ही। वर्गद्वितीय (ख्, फ्, छ्, ठ्, थ्) के लिये उस व्याकरण में कोई प्रत्याहार न था अतः उस में 'द्वितीयाः' कहकर उन का विधान किया गया है। पाणिनि के व्याकरण में भी वर्गद्वितीय वर्णों के लिये कोई प्रत्याहार नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि पौष्करसादि के व्याकरण में भी **खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्** ये तीन प्रत्याहारसूत्र इसी क्रम से या थोड़े बहुत अन्तर से विद्यमान रहे होंगे।

पाणिनीयतन्त्र से बहुत पूर्व भारत में कभी ऐन्द्रव्याकरण का बहुत प्रचलन था। महाभारत के टीकाकार देवबोध ने इस ऐन्द्रव्याकरण की महिमा गाते हुए ये दो श्लोक लिखे हैं --

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात् ।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनि-गोष्पदे ॥१॥
न दृष्ट इति वैयासे शब्दे मा संशयं कृथाः ।
अज्ञैरज्ञातमित्येव पदं न हि न विद्यते ॥२॥

अर्थात् व्यासमुनि ने जिन पदों को व्याकरण के सागर ऐन्द्र या माहेन्द्र व्याकरण से प्राप्त किया वे पदरत्न भला पाणिनि के छोटे से गोष्पदतुल्य व्याकरण में कहां प्राप्त हो सकते हैं ? व्यासमुनिप्रोक्त शब्द को पाणिनीय व्याकरण में न देखकर अज्ञजन ही संशय प्रकट किया करते हैं।

इस में ऐन्द्रव्याकरण को सागर तथा पाणिनीयव्याकरण को छोटे से गोष्पद के तुल्य कहा गया है। इस से ऐन्द्रव्याकरण की विशालता परिलक्षित होती है। ऐन्द्रव्याकरण यद्यपि चिरकाल से काल के गर्भ में समा चुका है तथापि अब भी उस के कहीं कहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कुछ थोड़े से उद्धरण प्राप्त हो जाते हैं। इस के प्रकृतोपयोगी दो उद्धरण यहां नीचे दिये जा रहे हैं—

(क) बाणभट्ट से पर्याप्त प्राचीन भट्टारहरिश्चन्द्र अपनी चरकव्याख्या में लिखते हैं—

शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूहः' इत्यैन्द्रव्याकरणस्य —।

(चरक न्यास पृष्ठ ५८, मस्तरामशर्ममुद्रापित)

इस से अनुमान होता है कि ऐन्द्रव्याकरण के आदि में भी **अथ वर्णसमूहः** के अन्तर्गत किसी वर्णसमूह का निर्देश किया गया था। यदि यह वर्णसमूह प्रत्याहारसूत्र थे (जिस की अधिक सम्भावना है) तो यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि पाणिनि की प्रत्याहारशैली भी कोई नवीन शैली नहीं बल्कि उस से पूर्वभावी वैयाकरणों द्वारा उपज्ञात एक पद्धति थी जिसे पाणिनि ने पूर्ण विकसित कर अपने तन्त्र का आश्रय बनाया। यह बात नन्दिकेश्वरकाशिका के व्याख्याता उपमन्यु की तत्त्वविमर्शिनी-टीकागत ऐन्द्रव्याकरण के एक उद्धृत वचन से भी पुष्ट होती है। काशिकागत द्वितीय-कारिका की व्याख्या के अन्त में उपमन्यु ने लिखा है—

(ख) **तथा चोक्तमिन्द्रेण—अन्त्यवर्णसमुद्भूता धातवः परिकीर्त्तिता इति।**[1]

इस उद्धृत वचन का तात्पर्य निर्णयसागरीय नवाह्निक महाभाष्य के सम्पादक रघुनाथशास्त्री ने अपने टिप्पण में इस प्रकार दिया है—**धातवो धातुमूलकशास्त्राणि अन्त्यवर्णसमुद्भूतानि।** अर्थात् अक्षरसमाम्नायीय सूत्रों के अन्त्य वर्णों से प्रत्याहार बना कर धातुमूलक शब्दशास्त्र प्रवृत्त होते हैं। यदि इस वचन की व्याख्या यही है तो इस से स्पष्ट है कि ऐन्द्रव्याकरण में भी किसी प्रकार से पठित प्रत्याहारसूत्रों के अन्त्य वर्णों से सम्भवतः प्रत्याहार बना कर शब्दशास्त्र की प्रवृत्ति दर्शाई गई होगी[2]।

व्याडि और गालव आचार्यों का एक मत पुरुषोत्तमदेवकृतभाषावृत्ति के (६.१.७७) सूत्र पर इस प्रकार से निर्दिष्ट है—

---

१. तुलना करें—(नन्दिकेश्वरकाशिकागत द्वितीय श्लोक के साथ)

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यवर्णचतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये॥

धात्वर्थम् = धातुमूलकशब्दशास्त्रप्रवृत्त्यर्थमिति शेखरे नागेशः।

२. परन्तु हमें रघुनाथशास्त्री की यह व्याख्या कल्पनाप्रसूत प्रतीत होती है तथा इस के साथ उपमन्युकृतव्याख्या की प्रामाणिकता पर भी पूर्ण सन्देह है, क्योंकि नन्दि-केश्वरकाशिका या उपमन्युकृत उस की टीका का उल्लेख नागेश से पूर्व के किसी ग्रन्थ में अभी तक नहीं मिला। अतः ऐन्द्रव्याकरण में भी आपिशलिव्याकरण के समान प्रत्याहारसूत्र थे—यह अभी प्रामाणिकरूप से कहा नहीं जा सकता। कहीं **अथ वर्णसमूहः** के अन्तर्गत ऐन्द्रव्याकरण में मातृकाक्रमेण वर्णों का उपदेश ही न हो।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इकां यण्भिर्व्यवधानं व्याडिगालवयोरिति वक्तव्यम् । दधियत्र ।।[1]

(भाषावृत्ति राजशाही सं० पृष्ठ ३८७)

व्याडि और गालव दोनों से पाणिनि परिचित थे। व्याडि का उल्लेख क्रौडचादि (४.१.८०) तथा गहादि (४.२.१३८) गणों में और गालव का निर्देश अष्टाध्यायी के **अङ् गार्ग्यगालवयोः** (७.३.९९) सूत्र में उन्होंने किया है। यदि उपर्युक्त वचन अपने मूलरूप में है अर्थात् अनुवादमात्र नहीं तो इस तरह व्याडि और गालव से प्रयुक्त इक् और यण् प्रत्याहार पाणिनि से पूर्वकालिक सिद्ध होते हैं। इस से प्रत्याहार-सूत्रों की भी सत्ता किसी न किसी रूप में पाणिनि से पौर्वकालिक अपने आप सिद्ध हो जाती है।

मेरे सतीर्थ्य अग्रज श्रीयुधिष्ठिरमीमांसकजी के अनुसार आचार्य व्याघ्रपद्य पाणिनि से बहुत पूर्व व्याकरणशास्त्र के एक आचार्य हो गुज़रे हैं। इन का एक मन्तव्य काशिका (७.१.९४) में इस प्रकार से निर्दिष्ट है—

सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम् ।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ।।

व्याघ्रपद्य के इस वचन में इक् प्रत्याहार का प्रयोग उपलब्ध होता है। इस से भी प्रत्याहार सूत्रों की सत्ता पाणिनि से पूर्व सिद्ध होती है।

मीमांसकजी के अनुसार भागुरि आचार्य भी पाणिनि से पूर्ववर्त्ती वैयाकरण हैं। इन का एक मन्तव्य पाणिनीयतन्त्र में बहुधा प्रामाणिकरूपेण उद्धृत किया जाता है—

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ।।

यदि यह भागुरि का स्वकीय वचन है तो इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भागुरि कम से कम हल् प्रत्याहार से तो परिचित थे ही।

व्याघ्रभूति की अनिट् कारिकाएं पाणिनीयवैयाकरणों में बहुत प्रसिद्ध हैं। काशिकाकार आदि प्राचीन वैयाकरण इन कारिकाओं का अपने अपने ग्रन्थों में खुला उल्लेख करते आये हैं। इन कारिकाओं में **यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते** इस प्रकार यम् प्रत्याहार का प्रयोग पाया जाता है। व्याघ्रभूति का काल अज्ञात है। यदि यह पाणिनि से पूर्ववर्त्ती सिद्ध हो जाता है तो इस के द्वारा प्रयुक्त यम् प्रत्याहार भी प्रत्याहारसूत्रों को पाणिनि से पूर्ववर्त्ती सिद्ध करने में ज्ञापक बन सकेगा।

---

१. यह मत जैनेन्द्रमहावृत्ति में 'एकेषाम्' के नाम से संगृहीत है—
इकां यण्भिर्व्यवधानमेकेषामिति संग्रहः ।। (जैनेन्द्र० १.२.१)
अमोघावृत्ति में भी यह मत निर्दिष्ट है—
इको यण्भिर्व्यवधानमित्येके । दधियत्र । मधुवत्र ।।
(शाकटायन० अमोघा १.१.७३)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उपसंहार :—

इस लेख में निर्दिष्ट पूर्वोक्त विविध प्रमाणों के आधार पर यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि **अइउण्, ऋलृक्** आदि प्रत्याहारसूत्रों के विषय में शिवजीकृत डमरूनिनाद वाली कथा बेसिरपैर की नितान्त अविश्वसनीय है। इस प्रकार की कोई बात वार्त्तिक, महाभाष्य, महाभाष्यदीपिका, काशिका, न्यास, कैयटकृत प्रदीप आदि किसी प्राचीन ग्रन्थ में कहीं नहीं पाई जाती; उल्टा इन ग्रन्थों में इन सूत्रों को पाणिनि की ही कृति स्वीकार किया गया है। **येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्०** वाला पाणिनिशिक्षा का श्लोक भी बहुत प्राचीन नहीं है। व्याकरण के किसी प्राचीन ग्रन्थ में इसे उद्धृत नहीं किया गया। सब से पहले इस का उल्लेख हरदत्त (ईश्वीय एकादश शताब्दी उत्तरार्ध) की पदमञ्जरी में पाया जाता है। वहां पर भी इसे पाणिनीयशिक्षा का वचन नहीं कहा गया अपितु **अत्रैव हि लौकिकाः स्मरन्ति**[1] के अन्तर्गत इसे उद्धृत किया गया है। किञ्च इस श्लोक में भी डमरूनिनाद का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। इस में माहेश्वर से पाणिनि को अक्षरसमाम्नाय की प्राप्ति का वर्णन ज़रूर किया गया है। अनेक मनीषियों का कथन है कि पाणिनि से बहुत पूर्व ऐन्द्र और माहेश्वर ये व्याकरण के दो प्रमुख सम्प्रदाय थे। पाणिनि इन में से माहेश्वरसम्प्रदाय का ही अनुगामी था[2]। सम्भवतः उस ने प्रत्याहारसूत्रों को भी माहेश्वर सम्प्रदाय से प्राप्त कर उस में ही थोड़ा हेरफेर कर अपने व्याकरण के अनुरूप इन को बिठाया। पाणिनि से पूर्व आपिशलि, शाकटायन, शन्तनु आदि के व्याकरणों में भी इन प्रत्याहारों का उल्लेख पाया जाता है। अतः इस से स्पष्ट हो जाता है कि पाणिनि ने ये सूत्र किसी न किसी रूप में अपने पूर्वज वैयाकरणों से प्राप्त कर इन्हें अपने व्याकरण के अनुरूप सुधारा और संवारा। यहां यह ध्यातव्य है कि इन सूत्रों को अष्टाध्यायी के अध्याय पाद आदियों में नहीं गिना जाता। इस विषय में पाणिनि ने सम्भवतः अपने

---

१. देखें—(काशिका पदमञ्जरीन्याससहिता काशी सं० प्रथमभाग पृष्ठ ६)।

२. माहेश्वरव्याकरण को लक्ष्य कर के लिखा गया यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

समुद्रवद् व्याकरणं महेश्वरे
ततोऽम्बुकुम्भोद्धरणं बृहस्पतौ।
तद्भागभागाच्च शतं पुरन्दरे
कुशाग्रबिन्दुग्रथितं हि पाणिनौ।

(देखें परिभाषावृत्ति, अनुबन्ध ३, राजशाही सं०)

अर्थात् माहेश्वरव्याकरण समुद्र के तुल्य विशाल था। बार्हस्पत्य व्याकरण उस समुद्र से लिये गये घट के तुल्य था। ऐन्द्रव्याकरण उस का भी शतांश था परन्तु पाणिनीयव्याकरण उस ऐन्द्रव्याकरण में डुबो कर निकाले गये कुशा के अग्रभाग से टपकते जलबिन्दुओं के तुल्य अर्थात् अत्यल्प तुच्छ परिमाण वाला है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पूर्वज वैयाकरणों का ही अनुसरण करना उचित समझा है। पाणिनि से पूर्ववर्ती व्याकरणों में भी आदि में अक्षरसमाम्नाय का निर्देश कर तदनन्तर उन तन्त्रों का आरम्भ किया जाता था—ऐसा भाष्यकार के वचनों से अनुमान होता है[1]। इस प्रकार की प्रथा पाणिनि के उत्तरवर्त्ती तन्त्रों में भी प्रायः पाई जाती है। यथा—चान्द्र, जैनेन्द्र, जैन शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि में अक्षरसमाम्नाय को मुख्य तन्त्र से बहिर्भूत रख कर बाद में अध्यायपादात्मक शास्त्र का आरम्भ किया गया है।

शिवढक्कानिनादोक्तौ विश्वस्यात् कः सुधीरिह।
मुनिरेव यतो भाष्ये कर्तैषां समुदाहृतः ॥१॥
तन्त्रकर्तृवरान् पूर्वान् अनुकृत्य मुनिर्व्यधात्।
परिवृत्तिस्तथा काचित् परिवृद्धिश्च तत्कृते ॥२॥
अतः शन्तनुसूत्रेषु प्रत्याहारा हयादयः।
प्रयुज्यन्ते हलादीनां विषये पूर्वसूरिभिः ॥३॥
उणादावपि दृश्यन्ते प्रत्याहारा ञमादयः।
तथैवान्येषु तन्त्रेषु बहुत्र पूर्ववर्तिषु ॥४॥
येनाक्षरसमाम्नायम् इत्युक्तिर्नैव श्रूयते।
भाष्यादिप्रमुखे ग्रन्थे नासौ याति प्रमाणताम् ॥५॥

——:ः०ः:——

१. एतदेकमाचार्यस्य मङ्गलार्थं मृष्यताम्। माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं वृद्धिशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते। मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते—। (महाभाष्य १.१.१)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अथ परिशिष्टानि

अब हम कातन्त्र, चान्द्र, जैनेन्द्र, शाकटायन, सरस्वतीकण्ठाभरण, हेमचन्द्र-शब्दानुशासन, मलयगिरिशब्दानुशासन, सारस्वत, मुग्धबोध, संक्षिप्तसार और हरिनामामृत—इन ग्यारह सुप्रसिद्ध पाणिनीतरव्याकरणों के प्रत्याहारसूत्रों को उद्धृत कर उन की पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत कर रहे हैं। इस से गत अढ़ाई सहस्र वर्षों के मध्य संस्कृतज्ञ भारतीय वैयाकरणों की मनसा का कुछ परिचय मिल सकेगा कि प्रत्याहारसूत्रों के विषय में उन के चिन्तन में समय-समय पर कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव आते रहे। इन परिशिष्टों के अन्त में बहुचर्चित नन्दिकेश्वरकाशिका का ग्रन्थ भी अविकल दिया जा रहा है जिस से पाठकों को इस विषय का पूरा-पूरा विवरण मिल सके कोई कसर न रहे।

परिशिष्ट (१) कातन्त्र-व्याकरण

[काल :—अज्ञात ईसापूर्व]

शर्ववर्मन् तथा कात्यायनद्वारा प्रणीत माना जाने वाला यह व्याकरण पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होता है। सम्भव है कि यह किसी बृहत्तन्त्र का संक्षिप्त संस्करण हो। इस व्याकरण को प्राय: ऐन्द्रशाखा से सम्बद्ध माना जाता है। इस के कर्त्ता तथा काल आदि का अभी ठीक से निर्धारण नहीं हो सका है। यह एक बालव्याकरण है जो आरम्भिक छात्रों के लिये रचा गया प्रतीत होता है। इस में यद्यपि प्रत्याहारसूत्र नहीं हैं तथापि आरम्भ में कुछ ऐसे प्रबन्ध अवश्य किये गये हैं जिन से प्रत्याहारों द्वारा लिया जाने वाला कार्य व्याकरणप्रक्रिया में अनायास सिद्ध हो जाता है। प्रत्याहारों की बजाय इस व्याकरण में स्वर, नामिन् (अवर्णवर्जित स्वर), सन्ध्यक्षर (ए, ऐ, ओ, औ), व्यञ्जन, वर्ग, घोष, अघोष, अनुनासिक, अन्तःस्थ, ऊष्म आदि शब्दों से काम चलाया गया है। सम्भवत: पाणिनीय प्रत्याहारशैली को नकारने वाला यह सर्वप्रथम व्याकरण है। कातन्त्र का प्रथम पाद इस प्रकार गुम्फित है—

सिद्धो वर्णसमाम्नायः ॥१॥ तत्र चतुर्दशादौ स्वराः ॥२॥ दश समानाः ॥३॥ तेषां द्वौ द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ ॥४॥ पूर्वो ह्रस्वः ॥५॥ परो दीर्घः ॥६॥ स्वरोऽवर्णवर्जो नामी ॥७॥ एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि ॥८॥ कादीनि व्यञ्जनानि ॥९॥ ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च ॥१०॥ वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाऽघोषाः ॥११॥ घोषवन्तोऽन्ये ॥१२॥ अनुनासिका ङञणनमाः ॥१३॥ अन्तःस्था यरलवाः ॥१४॥ ऊष्माणः शषसहाः ॥१५॥ अः इति विसर्जनीयः ॥१६॥ ≍क इति जिह्वामूलीयः ॥१७॥ ≍प इत्युपध्मानीयः ॥१८॥ अं इत्यनुस्वारः ॥१९॥ पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ॥२०॥ व्यञ्जनम्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अस्वरं परं वर्णं नयेत् ॥२१॥ अनतिक्रमयन् विश्लेषयेत् ॥२२॥ लोकोपचाराद् ग्रहण-सिद्धिः ॥२३॥ इति कातन्त्रे प्रथमेऽध्याये प्रथमः पादः ॥

इस व्याकरण पर दुर्गसिंह की वृत्ति बहुत प्रसिद्ध है ।

★ ★ ★

परिशिष्ट (२) चान्द्र-व्याकरण

[काल :—ईसा की पञ्चमशती से पूर्व]

कातन्त्र के प्रसार और परीक्षण के बाद सम्भवतः व्याकरण में प्रत्याहारों की उपयोगिता पुनः अनुभव की जाने लगी । अतः बौद्धाचार्य चन्द्रगोमी ने अपने व्याकरण में केवल एक संशोधन के साथ पाणिनीय प्रत्याहारसूत्रों का पुनः आश्रय करना उचित समझा । इस व्याकरण में प्रत्याहारसूत्रों की व्यवस्था इस प्रकार की गई है—

अइउण् ॥१॥ ऋलृक् ॥२॥ एओङ् ॥३॥ ऐऔच् ॥४॥ हयवरलण् ॥५॥ ञमङणनम् ॥६॥ झभञ् ॥७॥ घढधष् ॥८॥ जबगडदश् ॥९॥ खफछठथचटतव् ॥१०॥ कपय् ॥११॥ शषसर् ॥१२॥ हल् ॥१३॥

यहां पर पाणिनीयतन्त्र का ही अनुसरण किया गया है । केवल पाणिनीय **हयवरट्, लण्** इन दो सूत्रों के स्थान पर **हयवरलण्** इस प्रकार एक ही सूत्र रचा गया है । इस से चान्द्रव्याकरण में अट् प्रत्याहार नहीं बनता । अट्प्रत्याहार की आवश्यकता पाणिनीयतन्त्र में दो स्थानों के लिये होती है । एक— **शश्छोऽटि** (पा० ८.४.६२)और दूसरा—**अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि** (पा० ८.४.२) में । पहले स्थान पर तो स्वयं पाणिनीयव्याकरण में **छत्वममीति वक्तव्यम्** इस प्रकार कात्यायन ने संशोधन प्रस्तुत कर अट् को काट कर अम् कर दिया है । अतः चन्द्रगोमी ने भी इस स्थान के लिये **शश्छोऽमि** (चा० ६.४.१५७) सूत्र बनाया है । दूसरे स्थान के लिये चन्द्रगोमी ने विध्यात्मक ढंग को छोड़ कर निषेधात्मक ढंग से णत्व का प्रतिपादन किया है—**चुटुतुलशर्व्यवाये** (चा० ६.४.१३२) अर्थात् चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, लकार और शर् का व्यवधान होने पर नकार को णकार नहीं होता । इस प्रकार यहां पर भी उन को अट् प्रत्याहार की आवश्यकता नहीं पड़ी । पाणिनि को वैदिक **आतोऽटि नित्यम्** (पा० ८.३.३) तथा **दीर्घादटि समानपादे** (पा० ८.३.९) सूत्रों के लिये अट् प्रत्याहार को स्वीकार करना आवश्यक था अतः **हयवरट्, लण्** ये दो सूत्र बनाये गये । चान्द्रव्याकरण का स्वर-वैदिक भाग अभी अनुपलब्ध है अतः वहां चन्द्रगोमी ने क्या व्यवस्था की थी ? यह अभी अज्ञात है ।

चान्द्रव्याकरण पर चन्द्रगोमी की स्वोपज्ञवृत्ति बहुत प्रसिद्ध है ।

★ ★ ★

परिशिष्ट (३) जैनेन्द्र-व्याकरण

[काल :—ईसा की षष्ठ शती]

आचार्य अभयनन्दी की महावृत्ति के साथ मुद्रित देवनन्दी अपरनाम पूज्यपाद-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विरचित जैनेन्द्रव्याकरण में यद्यपि आदि में **अइउण्** आदि प्रत्याहारसूत्र नहीं दिये गये तथापि इस व्याकरण में पाणिनीय प्रत्याहारों का ठीक उसी रूप में खुल कर शतशः प्रयोग किया गया है। निदर्शनार्थ यथा—

(१) अण्—**रन्तोऽण् उः** (जै० १.१.४८)।
(२) इक्—**इकस्तौ** (जै० १.१.१७)।
(३) एङ्—**एङ् प्राचां देशे** (जै० १.१.७०)।
(४) अच्—**द्वित्वेऽचि** (जै० १.१.५६)।
(५) अट्—**शश्छोऽटि** (जै० ५.४.१३७)।
(६) यण्—**इग्यणो जिः** (जै० १.१.४५)।
(७) यम्—**हलो यमां यमि खम्** (जै० ५.४.१३८)।
(८) यञ्—**यञ्यतो दीः** (जै० ५.२.९६)।
(९) भष्—**एकाचो बशो भष् झषः स्ध्वोः** (जै० ५.३.५४)।
(१०) जश्—**झलां जश् झशि** (जै० ५.४.१२८)।
(११) छव्—**नश्छव्यप्रशान्** (जै० ५.४.२)।
(१२) झय्—**झयो हः** (जै० ५.४.१३६)।
(१३) खर्—**खरि** (जै० ५.४.१३०)।
(१४) झल्—**झलिकः** (जै० १.१.८३)।

इस के अतिरिक्त जैनेन्द्रव्याकरण में प्रत्याहारविधायक **अन्त्येनेतादिः** (जै० १.१.७३) सूत्र तथा उस पर अभयनन्दी की वृत्ति भी विद्यमान है। इस से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्रव्याकरण के आदि में भी विना किसी अन्तर के ये चौदह पाणिनीय प्रत्याहारसूत्र विद्यमान थे। जो सम्भवतः पाणिनीयतन्त्र की तरह अध्याय-पादसूत्रात्मक मुख्य तन्त्र में न गिने जाने के कारण बाद में छूटते-छूटते लुप्त हो गये।

★ ★ ★

परिशिष्ट (४) शाकटायन-व्याकरण

[काल :—ईसा की नवमशताब्दी]

जैन पाल्यकीर्तिविरचित शाकटायनव्याकरण के आदि में तेरह प्रत्याहारसूत्र दिये गये हैं—

अइउण् ॥१॥ **ऋक्** ॥२॥ **एओङ्** ॥३॥ **ऐऔच्** ॥४॥ **हयवरलञ्** ॥५॥ **ञमङणनम्** ॥६॥ **जबगडदश्** ॥७॥ **झभघढधष्** ॥८॥ **खफछठथट्** ॥९॥ **चटतव्** ॥१०॥ **कपय्** ॥११॥ **शषसअंअः ᳵक ᳶपर्** ॥१२॥ **हल्** ॥१३॥

इन में पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों की अपेक्षा छः स्थानों में विभिन्नता है—

(१) 'ऋक्' सूत्र में लृकार पाठ नहीं किया गया। यह सम्भवतः ऋकार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और लृकार के सावर्ण्य के कारण नहीं किया गया। अकेले 'ऋ' से ही दोनों का ग्रहण हो जाता है (देखें शाकटायन० २.३.२७)।

(२) **हयवरट्, लण्**—इन दो पाणिनीयसूत्रों के बदले यहां **हयवरलञ्** यह एक प्रत्याहारसूत्र बनाया गया है और इस के साथ-साथ णकार अनुबन्ध को भी बदल कर ञकार कर दिया गया है ताकि पूर्व णकार के साथ बने प्रत्याहारों में इस का सन्देह न पड़े। चान्द्रव्याकरण की तरह यहां पर भी पाणिनीय अट् प्रत्याहार का कहीं उपयोग नहीं हुआ है।

(३) पाणिनीय प्रत्याहारसूत्रों में वर्गीय चतुर्थवर्णों के बाद वर्गीय तृतीयवर्ण आते हैं परन्तु यहां **जबगडदश्** सूत्र को पहले दे कर बाद में वर्गीय चतुर्थवर्ण दिये गये हैं।

(४) पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों में वर्गीय चतुर्थवर्णों को **झभञ्, घढधष्** इस प्रकार दो सूत्रों में विभक्त किया गया है परन्तु यहां **झभघढधष्** इस तरह एक ही सूत्र में ये निबद्ध किये गये हैं।

(५) पाणिनीयप्रत्याहारसूत्र **खफछठथचटतव्** को यहां दो सूत्रों में विभक्त कर दिया गया है—**खफछठथट्** तथा **चटतव्**। इस से झट् प्रत्याहार बना कर उस का (शाकटायन० ४.१.६३) सूत्र में उपयोग किया गया है।

(६) पाणिनीयप्रत्याहारसूत्रों में **शषसर्** इतना ही सूत्र पढ़ा गया है परन्तु यहां उस में अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय को भी साथ में जोड़ दिया गया है। पाणिनीयसूत्र में इस कमी को वार्त्तिकद्वारा पूरा किया गया है।

ये सब परिवर्त्तन पाल्यकीर्त्ति ने अपने व्याकरण को निपुणरीत्या निबद्ध करते हुए बहुत ही सोच समझ कर किये हैं। अतः उस के तन्त्र में प्रक्रियासम्बन्धी कोई दोष उत्पन्न नहीं होता। उदाहरणतः पाणिनि ने **झभञ्** सूत्र में ञकार का अनुबन्ध केवल यञ् प्रत्याहार बनाने के लिये ही लगाया है। यञ् का उपयोग पाणिनि को केवल दो सूत्रों के लिये चाहिये था—**अतो दीर्घो यञि** (पा० ७.३.१०१), **सुपि च** (पा० ७.३ १०२)। प्रथमसूत्र में पाणिनि को यञ्प्रत्याहार के अन्तर्गत केवल वकार और मकार इन दो वर्णों का ही उपयोग करना था—पचामि, पचावः, पचामः, पचावहे, पचामहे। दूसरे सूत्र में यञ् के अन्तर्गत यकार और भकार वर्णों का ही उपयोग करना था—रामाय, रामाभ्याम्। शाकटायन ने अपने सूत्रों में इन वर्णों का साक्षात् निर्देश कर प्रत्याहारसूत्रों में ञकार अनुबन्ध उड़ा दिया है। तुलना करें—

पाणिनि	शाकटायन
अतो दीर्घो यञि (पा० ७.३.१०१)	**आद् मव्यतः** (शा० ४.२.३४)
सुपि च (पा० ७.३.१०२)	**भ्यत्याः** (शा० १.२.१६२)

यहां यह विशेष ध्यातव्य है कि शाकटायनव्याकरण में न कोई इष्टि है और

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

 Digitized by Madhuban Trust, Delhi

न ही कोई वार्त्तिक। सम्पूर्ण प्रतिपाद्य विषय सूत्रों या उन की व्याख्या के द्वारा ही प्रतिपादित है[1]। शाकटायन पर अमोघा नाम की विशाल स्वोपज्ञवृत्ति बहुत प्रसिद्ध है।

★ ★ ★

परिशिष्ट (५) सरस्वतीकण्ठाभरण

[काल :—ईसा की एकादश शती का पूर्वार्ध]

इस व्याकरण में प्रत्याहारसूत्र इस तरह दिये गये हैं—

अइउण् ॥१॥ ऋलृक् ॥२॥ एओङ् ॥३॥ ऐऔच् ॥४॥ हयवरलण् ॥५॥ ञमङणनम् ॥६॥ झभञ् ॥७॥ घढधष् ॥८॥ जबगडदश् ॥९॥ खफछठथचटतव् ॥१०॥ कपय् ॥११॥ शषसर् ॥१२॥ हल् ॥१३॥

महाराज भोजदेव ने प्रत्याहारसूत्रों में अपने से पूर्वभावी शाकटायन का अनुकरण न कर पाणिनि का ही अनुसरण करना उचित समझा है। पाणिनीय तथा भोजीय प्रत्याहारसूत्रों में केवल एक ही स्थान पर अन्तर है। पाणिनीयसूत्रों में जहां **हयवरट्, लण्** ये दो सूत्र बनाये गये हैं वहां भोजराज ने इन को एक ही सूत्र में ग्रथित किया है। पाणिनीय अट् प्रत्याहार का उपयोग इस में नहीं किया गया। भोजव्याकरण प्रायः पाणिनितन्त्र तथा चान्द्रतन्त्र पर ही आश्रित है। यहां यह विशेष ध्यातव्य है कि पाणिनीतर उपलब्ध व्याकरणों में केवल भोजव्याकरण ही एक ऐसा व्याकरण है जिस में स्वरवैदिकप्रकरण पूर्णतया अवस्थित पाया जाता है। परन्तु इस व्याकरण में पाणिनीयतन्त्र की तरह स्वरवैदिकप्रकरण को लौकिकप्रकरण के साथ मिश्रित नहीं किया गया अपितु इसे अलग से अष्टमाध्याय में निबद्ध किया गया है। इस व्याकरण में वार्त्तिक, परिभाषा, गण, उणादि, फिट् आदि सब सूत्रपाठ में ही सम्मिलित हैं। सूत्रपाठ से पृथक् कुछ नहीं—यही इस व्याकरण की सब से बड़ी उपलब्धि है। इस व्याकरण पर दण्डनारायण की हृदयहारिणीवृत्ति बहुत प्रसिद्ध है।

★ ★ ★

परिशिष्ट (६) हैम-शब्दानुशासन

[कालः—ईसा की द्वादश शती पूर्वार्ध]

जैनाचार्य हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन में प्रत्याहारों का प्रयोग न कर मातृकाक्रम का ही प्रायः आश्रय लिया है। फिर भी पाणिनीय प्रत्याहारों के बदले इन को कुछ संज्ञाएं तो करनी ही पड़ी हैं। इन का विवेचन उन्होंने अपने व्याकरण के आदि में ही किया है। पाणिनीयप्रत्याहारों का हैमशब्दानुशासनीय संज्ञाओं के साथ तुलनात्मक चक्र यथा—

---

१. **इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं वक्तव्यं सूत्रतः पृथक्।**
संख्यातं नोपसंख्यातं यस्य शब्दानुशासने ॥
(शाकटायनलघुवृत्ति पृष्ठ १)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाणिनीयप्रत्याहार	हैमसञ्ज्ञाएं
अच्	स्वर [औदन्ताः स्वराः (हैम० १.१.४)]
अक्	समान [लृदन्ताः समानाः (हैम० १.१.७)]
इच्	नामिन् [अनवर्णा नामी (हैम० १.१.६)]
एच्	सन्ध्यक्षर [ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षरम् (हैम०१.१.८)]
हल्	व्यञ्जन [कादिर्व्यञ्जनम् (हैम० १.१.१०)]
यण्	अन्तःस्था [यरलवा अन्तःस्थाः (हैम० १.१.१५)]
झय्	धुट् [अपञ्चमान्तःस्थो धुट् (हैम० १.१.११)]
खर्	अघोष [आद्यद्वितीयशषसा अघोषाः(हैम०१.१.१३)]
हश्	घोष [अन्यो घोषवान् (हैम० १.१.१४)]
शर्	शिट् [अं अः ⌣क ⌣पशषसाः शिट् (हैम०१.१.१६)]

इस व्याकरण पर आचार्य हेमचन्द्र ने स्वयं ही बृहद्वृत्ति नामक एक सुन्दर व्याख्या लिखी है। मतान्तरों का संकलन इस व्याख्या का वैशिष्टच है।

★ ★ ★

परिशिष्ट (७) मलयगिरिशब्दानुशासन

[काल :—ईसा की द्वादश शती उत्तरार्ध]

जैनाचार्य मलयगिरि ने अपने शब्दानुशासन में प्रायः हैमव्याकरण का ही अनुसरण किया है। परन्तु हैमव्याकरण की कुछ असुविधाओं को देख कर उन्होंने कई स्थानों पर पाणिनीय प्रत्याहारों का भी पुनः अनुसरण किया है। पाणिनीय प्रत्याहारों के साथ इस व्याकरण की संज्ञाओं का तुलनात्मक चक्र यथा—

पाणिनीयप्रत्याहार	मलयगिरितन्त्रोक्तसंज्ञा
अच्	स्वर (प्राग्विन्दोः स्वराः—मलय० सन्धि० ३)
इच्	नामिन् (अनवर्णा नामी—मलय० सन्धि० ५)
इक्	इक् (इग् एतः—मलय० सन्धि० ६)
अक्	समान (समानाः—मलय० सन्धि० ७)
अण्	अण् (ऋतोऽण्—मलय० सन्धि० ८)
एच्	एच् (एदादिरेच्—मलय० सन्धि० ९)
एङ्	एङ् (ए ओ एङ्—मलय० सन्धि० १०)
हल्	व्यञ्जन (कादिर्व्यञ्जनम्—मलय० सन्धि० १२)
खर्	अघोष (प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः—मलय० सन्धि० १४)
हश्	घोष (अन्यो घोषवान्—मलय० सन्धि० १५)
झय्	धुट् (अयञ्पञ्चमो धुट्—मलय० सन्धि० १६)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यण् — यञ् (**यरलवा यञ्** मलय० सन्धि०१७)
शर् — शिट् (**अंअः⌣क⌣पशषसाः शिट्**—मलय० सन्धि० १८)

इस से स्पष्ट है कि मलयगिरि ने पाणिनीय इक्, अण्, एच्, एङ्—इन चार प्रत्याहारों को हैमशब्दानुशासन की अपेक्षा अधिक सुगम अनुभव कर इन्हें अपने व्याकरण में स्थान दिया ।

इस व्याकरण पर मलयगिरि की स्वोपज्ञवृत्ति प्रकाशित हो चुकी है ।

★ ★ ★

परिशिष्ट (८) सारस्वत-व्याकरण

[काल :—ईसा की द्वादश शती का अन्त]

अनुभूतिस्वरूपाचार्य या मतान्तर से नरेन्द्र द्वारा विरचित सारस्वतव्याकरण में निम्नलिखित प्रकार से प्रत्याहारसूत्रों की व्यवस्था की गई है—

अइउऋलृ समानाः ॥१॥ ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः ॥२॥ ए ऐ ओ औ सन्ध्यक्षराणि ॥३॥ उभये स्वराः ॥४॥ अवर्जा नामिनः ॥५॥ ह य व र ल ॥६॥ ञ ण न ङ म ॥७॥ झ ढ ध घ भ ॥८॥ ज ड द ग ब ॥९॥ छ ठ थ ख फ ॥१०॥ च ट त क प ॥११॥ श ष स ॥१२॥

इस व्याकरण में पहली बार वर्णसमाम्नायस्थ वर्णों का क्रम पाणिनीय व्याकरण से नितान्त भिन्न दिया गया है। हकार को भी दो बार पढ़ा नहीं गया। प्रत्याहार बनाने के लिये अनुबन्धों का भी कोई प्रावधान नहीं किया गया। कहीं से भी आदि और अन्त को मिला कर सीधे प्रत्याहार बना लिये जाते हैं। आदि से लेकर अन्त तक के सब वर्ण प्रत्याहार के अन्तर्गत आ जाते हैं अन्त्य वर्ण को छोड़ा भी नहीं जाता। यथा—शस प्रत्याहार में आदि-मध्य-अन्त तीनों वर्ण (श्, ष्, स्) गृहीत हो जाते हैं किसी को इत्संज्ञक मान कर छोड़ा नहीं जाता। हां ! हकार आदियों में सर्वत्र अकार उच्चारणार्थक माना गया है। सारस्वतोक्त प्रत्याहारों के साथ पाणिनीय प्रत्याहारों का तुलनात्मक कोष्ठक यथा—

सारस्वतप्रत्याहार	संज्ञी वर्ण	पाणिनीयप्रत्याहार
(१) झभ[1]	[वर्ग चतुर्थ]	झष्
(२) अव	[स्वर, ह्, य्, व्]	नहीं

१. **भवतल एकैकस्माद् द्वाभ्यां मः स्यात् पबौ चतुर्भ्यः स्तः ।**
सः षड्भ्यः स्यादित्थम् प्रत्याहाराश्च विंशतिर्ज्ञेयाः ॥
(चन्द्रकीर्त्तिटीका, चौखम्बा सं०, प्रथमभाग, पृष्ठ १९)
इन के अतिरिक्त समान, स्वर, सन्ध्यक्षर, नामिन् आदियों से भी प्रत्याहारों का काम लिया गया है ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सारस्वतप्रत्याहार	संज्ञी वर्ण	पाणिनीयप्रत्याहार
(३) छत	[वर्गद्वितीय, च्, ट्, त्]	नहीं
(४) इल	[अवर्णरहित स्वर, अन्तःस्थ, ह्]	इण्
(५) यम	[अन्तःस्थ, वर्गपञ्चम]	यम्
(६) ञम	[वर्गपञ्चम]	ञम्
(७) यप	[अन्तःस्थ, वर्ग]	यय्
(८) झप	[पञ्चमवर्णरहित सब वर्ग]	झय्
(९) खप	[वर्गप्रथम, ख्, फ्]	नहीं
(१०) चप	[वर्गप्रथम]	चय्
(११) अब	[स्वर, ह्, अन्तःस्थ, वर्ग—५, ४, ३]	अश्
(१२) हब	[ह्, अन्तःस्थ, वर्ग—५, ४, ३]	हश्
(१३) जब	[वर्गतृतीय]	जश्
(१४) झब	[वर्ग—३,४]	झश्
(१५) हस	[सब व्यञ्जन]	हल्
(१६) वस	[ह्, य्—छोड़ सब व्यञ्जन]	नहीं
(१७) रस	[ह्, य्, व्—छोड़ सब व्यञ्जन]	नहीं
(१८) झस	[वर्ग—४, ३, २, १, श्, ष्, स्]	झर्
(१९) खस	[ख्, फ्, वर्ग—१, श्, ष्, स्]	नहीं
(२०) शस	[श्, ष्, स्]	शर्

जैसे अब, छत, खप, वस, रस, खस—इन सारस्वतप्रत्याहारों के लिये कोई पाणिनीयप्रत्याहार नहीं है वैसे पाणिनीय ङम्, यण्, एङ्, शल् आदि प्रत्याहारों के बदले सारस्वत में भी कोई प्रत्याहार नहीं है। सारस्वतव्याकरण में सरस्वतीप्रणीत सूत्र सात सौ कहे जाते हैं परन्तु बाद में वृद्धि होते होते रामाश्रमप्रणीत सिद्धान्त-चन्द्रिका में सूत्रों की संख्या दो हजार से भी अधिक पहुंच चुकी है।

★ ★ ★

परिशिष्ट (९) मुग्धबोधव्याकरण

[काल :— ईसा की त्रयोदश शती]

बोपदेवप्रणीत इस व्याकरण में प्रत्याहारसूत्रों की व्यवस्था इस तरह की गई है—

अ इ उ ऋ क, ए ओ ङ, ऐ औ च, ह य व र ल, ञ ण न ङ म, झ ढ ध घ भ, ज ड द ग ब, ख फ छ ठ थ, च ट त क प, श ष स ॥

इन सूत्रों में व्यञ्जनों में अकार उच्चारणार्थक है। इन से बने प्रायः चालीस प्रत्याहार इस व्याकरण में प्रयुक्त होते हैं—१. अक्। २. अच्। ३. अव्। ४. अम्। ५. अब्। ६. इक्। ७. इङ्। ८. इच्। ९. इल्। १०. ऋक्। ११. एङ्। १२. एच्। १३. एह्। १४. ऐच्। १५. हल्। १६. हव्। १७. हस् १८. यल्। १९. यम्। २०. यप्। २१. वस्। २२. ञम्। २३. ञप्। २४. ञस्। २५. णङ्। २६. णम्। २७. णप्। २८.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

झम् । २९. झब् ३०. झप् । ३१. झस् । ३२. ढम् । ३३. जब् । ३४. खथ् । ३५. खप् । ३६. खस् । ३७. छत् । ३८. चक् । ३९. चप् । ४०. शस् ।

इन प्रत्याहारों में अक्, इक्, अच्, इङ्, इच्, ऋक्, एङ्, एच्, ऐच् में अन्त्य क्, ङ्, च् का ग्रहण नहीं होता । शेष प्रत्याहारों में अन्त्य वर्णों का भी ग्रहण होता है । यथा—**अक्** प्रत्याहार में ककार का ग्रहण नहीं होता केवल अइउऋ वर्णों का ही ग्रहण होता है । **शस्** प्रत्याहार में अन्त्य सकार का भी ग्रहण हो जाता है ।

सम्भवतः उदाहरणों में सर्वप्रथम साम्प्रदायिकता का सूत्रपात करना इस व्याकरण का वैशिष्ट्य है । उत्तरवर्ती वैयाकरणों पर इस का बहुत प्रभाव पड़ा है ।

इस व्याकरण पर दुर्गादासविद्यावागीश की टीका बहुत प्रसिद्ध है ।

★ ★ ★

परिशिष्ट (१०) संक्षिप्तसार या जौमरव्याकरण

[काल :—ईसा की त्रयोदश शती]

यह व्याकरण क्रमदीश्वरप्रणीत है परन्तु जुमरनन्दी ने इसे परिष्कृत वा परिवर्धित किया है । इस व्याकरण के आदि में प्रत्याहारसूत्र नहीं दिये गये । परन्तु वृत्ति में कहा गया है कि पूर्वाचार्यों के **अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्** इन चार सूत्रों का आश्रय ले कर प्रत्याहार समझ लेने चाहियें । फलतः इस व्याकरण में अङ्, अच्, अक्, इक्, एङ्, एच्, ऐच्, इच् इन प्रत्याहारों का खुल कर प्रयोग पाया जाता है । अन्य पाणिनीय प्रत्याहारों का प्रयोग न कर प्रकारान्तर से सूत्रों का निर्माण किया गया है । परन्तु हल् प्रत्याहार का प्रयोग कई जगह मिलता है ।

प्रत्याहारप्रयोगों के कुछ उदाहरण यथा—

अच्—**यवरलोऽचि** (सन्धिपाद ८१)

अक्—**सवर्णेनाग्दीर्घः** (सन्धिपाद ८५)

ऐच्—**ऐज् एचोऽता** (सन्धिपाद ६८) ।

एङ्—**एङोऽतः** (सन्धिपाद १०७) ।

इच्—**इजादेरेव नुपान्तस्य** (सन्धिपाद ३२०) ।

हल्—**हलि तदेतत्सैषाभ्याम्** (सन्धिपाद १६८) ।

इस व्याकरण पर गोयीचन्द्र की टीका बहुत प्रसिद्ध है ।

★ ★ ★

परिशिष्ट (११) हरिनामामृतव्याकरण

[काल :—ईसा की षोडश शती का उत्तरार्ध]

व्याकरण के क्षेत्र में जिस साम्प्रदायिकता का सूत्रपात बोपदेव ने किया था उस की पराकाष्ठा हरिनामामृतव्याकरण में देखी जा सकती है । वैष्णवसम्प्रदाय के आचार्य श्रीजीवगोस्वामिनिर्मित यह व्याकरण अपने सम्प्रदाय का प्रमुख व्याकरण है । मनुष्यमात्र को जाने अनजाने प्रत्येक अवस्था में हरि के नामों, हरि की लीलाओं या

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तत्सम्बद्ध वस्तुओं का स्मरण वा उच्चारण करते रहना चाहिये—इस आस्था को ले कर ही यह नवीन व्याकरण प्रस्तुत किया गया है। व्याकरण के ठेठ पारिभाषिक शब्द भी यहां हरिलीलासम्बद्ध व्यक्तियों या वस्तुओं के नामों पर रखे गये हैं। आरम्भ में वर्णों का मातृकाक्रम दे कर उसे नारायण से उद्भूत कहा गया है। पाणिनीय प्रत्याहारों तथा अन्य संज्ञाओं के लिये भी इस में चुन चुन कर विष्णुसम्बन्धी नाम रखे गये हैं। निदर्शनार्थ कुछ सञ्ज्ञाएं यथा—

पाणिनि	हरिनामामृत	पाणिनि	हरिनामामृत
अक्	दशावतार	झय्	विष्णुदास
अण्	अनन्त	अम्	हरिवेणु
अच्	सर्वेश्वर	जश्	हरिगदा
इच्	ईश्वर	चय्	हरिकमल
उक्	चतुर्भुज	झल्	वैष्णव
एच्	चतुर्व्यूह	हश्	गोपाल
हल्	विष्णुजन	मय्	विष्णुगण
शर्	शौरि	ह्रस्व	वामन
शल्	हरिगोत्र	दीर्घ	त्रिविक्रम
खर्	यादव	प्लुत	महापुरुष
यण्	हरिमित्र	अनुस्वार	विष्णुचक्र
शल्	हरिगोत्र	अनुनासिक	विष्णुचाप
रल्	बल	विसर्ग	विष्णुसर्ग
झष्	हरिघोष	आगम	विष्णु
खय्	सात्वत	लोप	हर
इण्	चतुःसन	आदेश	विरिञ्चि

इस प्रकार के प्रयत्न से पहले से ही जटिल व्याकरणशास्त्र में और भी जटिलता की अनुभूति होने लगती है। यही कारण है कि यह पद्धति स्वयं वैष्णवों में भी लोकप्रिय न हो सकी और इस व्याकरण का विशेष प्रचार वा प्रसार न हो सका।

इति भूतपूर्वाखण्ड-भारतान्तर्गत-सिन्धुतटवर्त्ति-डेराइस्माईलखानाख्यनगरवास्तव्य भाटियावंशावतंस-स्वर्गत-श्रीमद्रामचन्द्रवर्मसूनुना एम्० ए० साहित्यरत्नेत्याद्यनेकोपाधिभृता वैद्येन भीमसेनशास्त्रिणा विरचितम्

'प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?'

इत्याख्यं लघुशोधपत्रं

पूर्त्तिमगात् ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

★ अथ नन्दिकेश्वरकाशिका ★

नृत्तावसाने नटराजराजो
ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्
एतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥१॥

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यवर्णचतुर्दशम् ।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये ॥२॥

[अइउण् ॥१॥]

अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु ।
चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः ॥३॥

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः ।
आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते ॥४॥

सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत् ।
ज्ञप्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक् ततः स्मृता ॥५॥

वक्त्रे विशुद्धचक्राख्ये वैखरी सा मता ततः ।
सृष्ट्याविर्भावमासाद्य मध्यमा वाक् समा मता ॥६॥

अकारं संनिधीकृत्य जगतां कारणत्वतः ।
इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं गतम् ॥७॥

जगत्स्रष्टुमभूदिच्छा यदा ह्यासीत्तदाभवत् ।
कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेद-पारगाः ॥८॥

अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला मता ।
उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः ॥९॥

[ऋलृक् ॥२॥]

ऋलृक् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत् ।
तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत् ॥१०॥

वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते ।
चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्वद् यथा वागर्थयोरपि ॥११॥

स्वेच्छया स्वस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मूलयत्यसौ ।
वर्णानां मध्यमं क्लीबमलृवर्णद्वयं विदुः ॥१२॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

[एओङ् ॥३॥]

एओङ् मायेश्वरात्म्यैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु ।
साक्षित्वात्सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम् ॥१३॥

[ऐऔच् ॥४॥]

ऐऔच् ब्रह्मस्वरूपः सन् जगत्स्वान्तर्गतं ततः ।
इच्छया विस्तरं कर्तुमाविरासीन्महामुनिः ॥१४॥

[हयवरट् ॥५॥]

भूतपञ्चकमेतस्माद् हयवरण्महेश्वरात् ।
व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि ॥१५॥
हकाराद्व्योमसंज्ञं च यकाराद्वायुरुच्यते ।
रकाराद्वह्निस्तोयं तु वकारादिति सैव वाक् ॥१६॥

[लण् ॥६॥]

आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम् ।
अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम् ॥१७॥

[ञमङणनम् ॥७॥]

शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाश्च ञमङणनम् ।
व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात्सर्ववस्तुषु ॥१८॥

[झभञ् ॥८॥]

वाक्पाणी च झभञासीद् विराड्रूपचिदात्मनः ।
सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते ।
वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियमया हि ते ॥१९॥

[घढधष् ॥९॥]

घढधष् सर्वभूतानां पादपायू उपस्थकः ।
कर्मेन्द्रियगणा ह्येते जाता हि परमार्थतः ॥२०॥

[जबगडदश् ॥१०॥]

श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वा धीन्द्रियपञ्चकम् ।
सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश् ॥२१॥

[खफछठथचटतव् ॥११॥]

प्राणादिपञ्चकं चैव मनो बुद्धिरहंकृतिः ।
बभूव कारणत्वेन खफछठथचटतव् ॥२२॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वर्गद्वितीयवर्णोत्थाः प्राणाद्याः पञ्च वायवः ।
मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः ॥२३॥

[कपय् ॥१२॥]

प्रकृतिं पुरुषं चैव सर्वेषामेव सम्मतम् ।
सम्भूतमिति विज्ञेयं कपय् स्यादिति निश्चितम् ॥२४॥

[शषसर् ॥१३॥]

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा ।
समाश्रित्य महादेवः शषसर् क्रीडति प्रभुः ॥२५॥
शकाराद्राजसोद्भूतिः षकारात्तामसोद्भवः ।
सकारात्सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः ॥२६॥

[हल् ॥१४॥]

तत्त्वाऽतीतः परः साक्षी सर्वाऽनुग्रहविग्रहः ।
अहमात्मा परो हल् स्यामिति शम्भुस्तिरोदधे ॥२७॥

इति नन्दिकेश्वरकृता काशिका समाप्ता ॥

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

❀ भैमी प्रकाशन के ग्रन्थों की नवीन सूची ❀

(१) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भैमीव्याख्या (प्रथम भाग)

यह भाग पञ्च-सन्धि-षड्लिङ्ग-अव्ययप्रकरणात्मक है । यह द्वितीय बार मुद्रित हुआ है । इस नवीनतम संस्करण में लेखक ने अनेक नये संशोधन वा परिवर्धन किये हैं। विषय को परिमार्जित तथा स्पष्ट करने के लिये सैकड़ों नये उदाहरण तथा दो सौ से अधिक नये शोधपूर्ण फुटनोट तथा टिप्पण दिये गये हैं । अव्ययप्रकरण को पहले से लगभग दुगना कर दिया है। इस प्रकार प्रायः दो सौ पृष्ठों की ठोस सामग्री पूर्वापेक्षया इस संस्करण में अधिक संगृहीत है । अन्य भागों की तरह इस भाग को भी समानरूप में परिणत किया गया है। चार प्रकार के नवीन आधुनिक टाइपों के द्वारा सुन्दर शुद्धतम छपाई, अंग्रेजी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड आकर्षक मजबूत जिल्द । (२३ × ३६) ÷ १६ साइज के लगभग साढ़े छः सौ पृष्ठों का मूल्य केवल एक सौ पचास रुपये (Rs. 150/-) ।

(२) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भैमीव्याख्या (द्वितीय भाग)

इस भाग में दस गण और एकादश प्रक्रियाओं की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है । तिङन्तप्रकरण व्याकरण की पृष्ठास्थि (Backbone) समझा जाता है । क्योंकि धातुओं से ही विविध शब्दों की सृष्टि हुआ करती है। अतः इस भाग की व्याख्या में विशेष श्रम किया गया है । प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्तिवचन, समासविग्रह, अनुवृत्ति, अधिकार, प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजन्य **वैशिष्ट्य**, अर्थनिष्पत्ति, उदाहरण-प्रत्युदाहरण और सारसंक्षेप के अतिरिक्त प्रत्येक धातु के दसों लकारों की रूपमाला सिद्धिसहित दिखाई गई है । चार सौ से अधिक सार्थ **उपसर्गयोग** तथा उनके लिये विशाल संस्कृतसाहित्य से चुने हुए एक सहस्र से अधिक उदाहरणों का अपूर्व संग्रह प्रस्तुत किया गया है । लगभग डेढ़ हजार रूपों की ससूत्र सिद्धि और एक सौ के करीब शास्त्रार्थ और शङ्का-समाधान इस में दिये गये हैं। अनुवादादि के सौकर्य के लिये छात्रोपयोगी णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, भावकर्म आदि प्रक्रियाओं के अनेक शतक और संग्रह भी अर्थसहित दिये गये हैं । अन्त में अनुसन्धानोपयोगी छहः प्रकार के परिशिष्ट दिये गये हैं । सुन्दर, बढ़िया, जिल्द तथा पक्की सिलाई ने ग्रन्थ को और अधिक चमत्कृत कर दिया है । यह भाग (२३ × ३६) ÷ १६ आकार के ७५० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मूल्य : केवल तीन सौ रुपये (Rs 300/ - Only)

(३) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या (तृतीय भाग)

इस भाग में कृदन्त और कारक प्रकरणों का विस्तृत वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है । सुप्रसिद्ध कृत्प्रत्ययों के लिये कई विशाल शब्दसूचियां अर्थ तथा ससूत्र-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

टिप्पणों के साथ बड़े यत्न से गुम्फित की गई हैं, जिनमें अढ़ाई हजार से अधिक शब्दों का अपूर्व संग्रह है। प्रायः प्रत्येक प्रत्यय पर संस्कृतसाहित्य में से अनेक सुन्दर सुभाषितों या सूक्तियों का संकलन किया गया है। कारकप्रकरण लघुकौमुदी में केवल सोलह सूत्रों तक ही सीमित है जो स्पष्टतः बहुत अपर्याप्त है। भैमीव्याख्या में इन सोलह सूत्रों की विस्तृत व्याख्या करते हुए अन्त में अत्यन्त उपयोगी लगभग पचास अन्य सूत्र-वार्तिकों की भी सोदाहरण सरल व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार कुल मिलाकर कारकप्रकरण ५६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। अनेक प्रकार के उपयोगी परिशिष्टों सहित यह भाग लगभग चार सौ पृष्ठों में समाश्रित हुआ है। पूर्ववत् अङ्ग्रेजी पक्की सिलाई, स्क्रीनप्रिंटिड आकर्षक जिल्द। मूल्य केवल एक सौ बीस रुपये (Rs. 120/-)।

(४) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या (चतुर्थ भाग)

भैमीव्याख्या के इस चतुर्थ भाग में समासप्रकरण का अत्यन्त विस्तार के साथ लगभग तीन सौ पृष्ठों में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थगत प्रत्येक प्रयोग के लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के विग्रह निर्दिष्ट कर उस की सूत्रों द्वारा अविकल साधनप्रक्रिया दर्शाई गई है। मूलोक्त उदाहरणों के अतिरिक्त सैंकड़ों अन्य नवीन उदाहरणों को विशाल संस्कृतसाहित्य से चुन-चुन कर इस व्याख्या में गुम्फित किया गया है। इस प्रकार इस व्याख्या में बारह सौ से अधिक समासोदाहरण संगृहीत किये गये हैं। साहित्यिक उदाहरणों के स्थलनिर्देश भी यथासम्भव दे दिये गये हैं। प्रबुद्ध विद्यार्थियों के मन में स्थान स्थान पर उठने वाली दो सौ से अधिक शङ्काओं का भी इस में यथास्थान समाधान किया गया है। जगह जगह उपयोगी पादटिप्पण (फुटनोट्स) दिये गये हैं। मूलगत सूत्रवार्त्तिक आदियों के अतिरिक्त छात्रोपयोगी कई अन्य सूत्रवार्त्तिक आदियों का भी इसमें सोदाहरण व्याख्यान किया गया है। लघुकौमुदी के अशुद्ध या भ्रष्ट पाठों पर भी अनेक टिप्पण दिये गये हैं। व्याख्याकार की सूक्ष्मेक्षिका, स्वाध्याय-निपुणता तथा कठिन से कठिन विषय को भी नपे-तुले शब्दों में समझा देने की अपूर्व क्षमता इस व्याख्या में पदे पदे परिलक्षित होती है। समासप्रकरण पर इतनी विस्तृत व्याख्या आज तक लिखी ही नहीं गई। इस से विद्यार्थिवर्ग और अध्यापकवृन्द दोनों जहां लाभान्वित होंगे वहां अनुसन्धानप्रेमियों को भी प्रचुर अनुसन्धानसामग्री प्राप्त होगी। विद्वान् लेखक ने सततोत्थायी हो कर दो वर्षों के कठोर परिश्रम से सैकड़ों ग्रन्थों का मन्थन कर इस भाग को तैयार किया है। अन्त में विविध परिशिष्टों से इस ग्रन्थ को विभूषित किया गया है। व्याख्यागत बारह सौ उदाहरणों की समासनामनिर्देशसहित बनी वर्णानुक्रमणी इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताओं में एक समझी जायेगी। इस के सहारे सम्पूर्ण समासप्रकरण की आवृत्ति करने में विद्यार्थियों को महती सुविधा रहेगी। ग्रन्थ में यथास्थान अनेक अभ्यास दिये गये हैं। समीक्षकों का कहना है कि यदि इन अभ्यासों को सुचारु रूप में हल कर लिया जाये तो विद्या-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

र्थियों को सिद्धान्तकौमुदी या काशिका में समासप्रकरण को समझने का स्वतः सामर्थ्य प्राप्त हो सकता है। (२३ × ३६) ÷ १६ साइज के लगभग तीन सौ पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। साफ सुथरी शुद्ध छपाई, पक्की सिलाई तथा सुन्दर स्क्रीन प्रिंटिड जिल्द से यह ग्रन्थ और भी अधिक आकर्षक बन गया है। मूल्य एक सौ बीस रुपये मात्र (Rs. 120/-)।

(५) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या (पञ्चम भाग)

इस भाग में लघुसिद्धान्तकौमुदी के तद्धितप्रकरण की अतीव सरल ढंग से सविस्तार व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सूत्र की व्याख्या के बाद हर एक उदाहरण का विग्रह, अर्थ तथा विशद सिद्धि इस में दर्शाई गई है। मूलगत उदाहरणों के अतिरिक्त साहित्यगत विविध उदाहरणों से भी यह ग्रन्थ विभूषित है। पठन-पाठन में उठने वाली प्रत्येक शङ्का का इस में समाधान किया गया है। मूलोक्त सूत्रों के अतिरिक्त भी छात्रोपयोगी अनेक सूत्रों की इस में व्याख्या दर्शाई गई है। यत्र-तत्र यत्न से अभ्यास निबद्ध किये गये हैं जिन की सहायता से सारा प्रकरण दोहराया जा सकता है। अन्त में अनेक परिशिष्टों के अतिरिक्त उदाहरणसूची वाला परिशिष्ट इस ग्रन्थ का विशेष आकर्षण है। मूल्य दो सौ पचास रुपए।

(६) लघु-सिद्धान्त-कौमुदी भैमीव्याख्या (षष्ठ भाग)

इस भाग में लघुकौमुदी के स्त्रीप्रत्ययप्रकरण की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सूत्र की विशद व्याख्या के अनन्तर तद्गत प्रत्येक प्रयोग की विस्तृत सिद्धि तथा अनेकविध उदाहरण-प्रत्युदाहरणों एव शङ्कासमाधानों से यह भाग विभूषित है। मूलोक्त सूत्रों के अतिरिक्त छात्रोपयोगी अन्य भी अनेक सूत्र और वार्त्तिक इस में सोदाहरण व्याख्यात किये गये हैं। जगह जगह साहित्यिक उदाहरण ढूंढ ढूँढ कर संकलित किये गये हैं। 'स्वाङ्ग' और 'जाति' सरीखे पारिभाषिक शब्दों तथा अन्य कठिन स्थलों की सरलभाषा में विस्तार के साथ विवेचना की गई है। दूसरे शब्दों में ग्रन्थ का कोई भी व्याख्येयांश विना व्याख्या के अछूता छोड़ा नहीं गया। पठितविषय की आवृत्ति के लिये यत्र-तत्र अनेक अभ्यास दिये गये हैं। नानाविध सूचीपरिशिष्टों विशेषतः प्रत्ययनिर्देशसहित दी गई उदाहरणसूची से इस ग्रन्थ का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अन्त में स्त्रीप्रत्ययसम्बन्धी एक सौ से अधिक पद्यबद्ध अशुद्धियों का सहेतुक शोधन दर्शा कर लक्ष्यों के प्रति विद्यार्थियों की जागरूकता को प्रबुद्ध करने का विशेष प्रयत्न किया गया है। अनुसन्धानप्रेमी जनों के लिये भी दर्जनों महत्त्वपूर्ण टिप्पण जहां तहां दिये गये हैं। कई स्थानों पर पाणिनीतरव्याकरणों का आश्रय ले कर भी विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः इतनी विशद सर्वाङ्गीण व्याख्या स्त्रीप्रत्ययप्रकरण पर पहली बार प्रकाशित हुई है। (२३ × ३६) ÷ १६ साइज के डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सुन्दर शुद्ध छपाई, बढ़िया स्क्रीन-प्रिंटिड जिल्द तथा पक्की सिलाई से यह ग्रन्थ और भी चमत्कृत हो उठा है। मूल्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

साठ रुपये मात्र (Rs. 60/-) ।

नोट—अब लघुकौमुदी भैमीव्याख्या के सब खण्ड मुद्रित हो चुके हैं ।

(७) **अव्ययप्रकरणम्** । लघुकौमुदी का अव्ययप्रकरण भैमीव्याख्यासहित पृथक् भी छपवाया गया है । इस में लगभग सवा पाञ्च सौ अव्ययों का सोदाहरण साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है । प्रत्येक अव्यय पर वैदिक वा लौकिक संस्कृतसाहित्य से अनेक सुन्दर सुभाषितों वा सूक्तियों का संकलन किया गया है । कठिन सूक्तियों का अर्थ भी साथ में दे दिया गया है । आज तक इतना शोधपूर्ण परिश्रम इस प्रकरण पर पहली बार देखने में आया है । साहित्यप्रेमी विद्यार्थियों तथा शोध में लगे जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ विशेष उपादेय है । सुन्दर अंग्रेजी सिलाई, आकर्षक जिल्द । मूल्य केवल पेंच्चीस रुपये । (Rs. 25/-)

(८) **वैयाकरण-भूषणसार (धात्वर्थनिर्णय) भैमीभाष्य** । इस हिन्दी भाष्य से इस ग्रन्थ की दुरूहता समाप्त हो गई है । अब परीक्षा में भूषणसार की पंक्तियों को रटने की कोई आवश्यकता नहीं रही । सरल भाषा में लिखे इस ग्रन्थ का एक बार पारायण करना ही पर्याप्त है । देश-विदेश में समानरूप से आदृत यह ग्रन्थ विद्वत्समाज में अपना गौरवपूर्ण स्थान पा चुका है । मूल्य : डेढ़ सौ रुपये (Rs 150/- Only)

(९) **बालमनोरमा-भ्रान्ति-दिग्दर्शन** । यह निबन्ध विद्वत्समाज की आंखों को खोलने वाला विलक्षण शोधपत्र है । एक वार पढ़ जाइये, ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ आप का मनोरञ्जन भी होगा । मूल्य केवल दस रुपये । (Rs. 10/-)

(१०) **प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन ?** इति माहेश्वराणि सूत्राणि—के अन्धविश्वासरूप तिमिर से मुक्त होने के लिये यह शोधपत्र प्रत्येक जिज्ञासु के लिये संग्रहणीय, मननीय तथा अभ्यसनीय है । अश्रुतपूर्व अनेक प्रमाणों के आलोक में निश्चय ही वर्षों से छाया इस विषय का अज्ञान मिट जायेगा । मूल्य केवल पच्चीस रुपये (Rs. 25/-) ।

(११) **न्यास-पर्यालोचन** । यह ग्रन्थ व्याकरणसम्बन्धी सैकड़ों अश्रुतपूर्व विषयों का आगार है । इस प्रकार का शोधपूर्ण प्रयत्न व्याकरणविषय पर प्रथम बार प्रकाशित हुआ है । इस के विषयवार वैशिष्ट्य के लिये पुस्तकसूची देखें । स्क्रीन प्रिंटिड सुन्दर जिल्द, पक्की अङ्ग्रेजी सिलाई । मूल्य केवल एक सौ पचास रुपये ।

संस्कृत के छात्र, विद्वज्जन एवं अध्यापक लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमीव्याख्या) के सभी छह भाग 25% की विशेष छूट के साथ 750.00+25.00 (डाकव्यय) = 775.00 का मनीआर्डर भेजकर सीधे हमसे मंगवा सकते हैं–

भैमी प्रकाशन
५३७, लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली-११०००६

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संस्कृतव्याकरण में अपूर्व ग्रन्थ

लघु-सिद्धान्त-कौमुदी-भैमीव्याख्या

न्यासपर्यालोचन, वैयाकरण भूषणसार–भैमीभाष्य, बालमनोरमा–भ्रान्ति–दिग्दर्शन, प्रत्याहारसूत्रों का निर्माता कौन?–आदि ग्रन्थों के निर्माता श्रीभीमसेन–शास्त्री एम०ए०,पीएच् डी० के दीर्घकालिक व्याकरणाध्यापन का निचोड़ यह छः खण्डों में विभक्त भैमीव्याख्या है। लघुसिद्धान्तकौमुदी पर इस प्रकार की परिष्कृत,वैज्ञानिक,विश्लेषणात्मक,विस्तृत हिन्दीव्याख्या आज तक नहीं निकली। इस के आ जाने से संस्कृतव्याकरण को समझना अब अतीव सुगम हो गया है । इस व्याख्या में प्रत्येक सूत्र का पदच्छेद, विभक्तिवचन, समास–विग्रह, अनुवृत्ति,अधिकार,सूत्रगत एवम् अनुवर्त्तित प्रत्येक पद का अर्थ, परिभाषाजन्य विशेषता, अर्थ [illegible] उदाहरण–प्रत्युदाहरण तथा विस्तृत सिद्धि दर्शाते हुए छात्रों और अध्यापकों [illegible] वाली प्रत्येक शङ्का का पूर्णतया विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया गया है। [illegible] पर परिपठित विषय के आलोचन के लिये बड़े यत्न से पर्याप्त विस्तृत अभ्यास [illegible] किये गये हैं। इस व्याख्या की रूपमालाओं में अनुवादोपयोगी दो हजार शब्दों [illegible] अर्थसहित बृहत्संग्रह किया गया है। अव्ययप्रकरण में सवा पाञ्च सौ अव्ययों के अर्थों का [illegible] विवेचन कर के उनके लिये विशाल संस्कृतवांग्मय से किसी न किसी सूक्ति वा सुभाषित आदि को संगृहीत करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। छात्रों के सौकर्य के लिये णिजन्त, सन्नन्त,यङन्त,यङन्त,भावकर्म आदि प्रक्रियाओं तथा तव्यत्, तव्य, अनीयर, क्त, क्तवतु, शतृ, शानच्,तुमुन्,ल्युट्,क्त्वा,ल्यप् आदि प्रत्ययान्त शब्दों के अनेकशः शतक भी सार्थ–सटिप्पण दिये गये हैं। कारक प्रकरण को पर्याप्त लम्बा और स्पष्ट किया गया है। इसके स्पष्टीकरणार्थ मूलातिरिक्त अन्य अनेक सूत्र भी सार्थ सोदाहरण संकलित किये गये हैं। इस प्रकरण का बालोपयोगी शुद्धा–शुद्ध विवेचन बहुत उपयोगी है। समासप्रकरण अत्यन्त विस्तार के साथ तीन सौ पृष्ठों में व्याख्यात हुआ है । हर एक उदाहरण की विग्रहपूर्वक ससूत्र सिद्धि दर्शाकर अन्य भी अनेक साहित्यिक उदाहरण उद्धृत किये गये हैं। तद्धितप्रकरण की विशद व्याख्या 400 पृष्ठों में समाप्त हुई है। इस में अनेक नये सूत्र शतशः अन्य उदाहरण संकलित किये गये हैं। दो पृष्ठों वाले स्त्रीप्रत्यय प्रकरण की व्याख्या डेढ़ सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है। अन्त में एक सौ से अधिक पद्यबद्ध अशुद्धियों का सहेतुक शोधन दर्शाया गया है। इस व्याख्या के छः भागों का विवरण इस प्रकार है–

प्रथम भाग (तृतीय संस्करण,सन्धि–षड्लिङ्ग–अव्यय)	मूल्य 150/- रु०
द्वितीय भाग (द्वितीय संस्करण,दशगण–एकादश प्रक्रिया)	मूल्य 300/- रु०
तृतीय भाग (कृदन्त एवं कारकप्रकरण)	मूल्य 120/- रु०
चतुर्थ भाग (समासप्रकरण)	मूल्य 120/- रु०
पंञ्चम भाग (तद्धितप्रकरण)	मूल्य 250/- रु०
षष्ठ भाग (स्त्रीप्रत्ययप्रकरण)	मूल्य 60/- रु०

सम्पूर्ण सेट (छःभाग) का मूल्य 1000/- रु० है। अध्यापकों वा छात्रों को डाकव्ययसहित 750+25=775/- रु० में प्राप्य है । 775/- पेशगी मनीआर्डर द्वारा भेज कर सीधे हम से ग्रन्थ मंगवा सकते हैं।

भैमी प्रकाशन

537, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली–110006

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.